❀ ओ३म् ❀

सं० १८

माज मुख मर्दन



लेखक—

डा० श्रीराम आर्य

[मू० १·५० न०पै०

ओ३म्

मण्डन ग्रन्थ माला सं० १८

मुनि समाज मुख मर्दन

(…र्थ प्रकाश' तथा 'मुनि समाज और आर्य समाज' पुस्तकों का उत्तर)

लेखक

डा० श्रीराम आर्य

प्रकाशक

वैदिक साहित्य प्रकाशन सङ्घ

कासगंज (उ० प्र०) भारतवर्ष

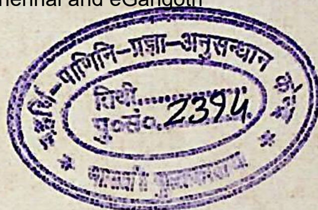
] दयानन्दाब्द [मू० १.५० न० पै०

सृष्टि सम्वतः १९७२९४९०६१

सन् १९६१ ई०

प्रकाशक—
वैदिक साहित्य प्रकाशन संघ
कासगंज उ० प्र०

मुद्रक—
श्री गोपाल प्रिंटिंग प्रेस
हाथरस।



ग्रन्थकर्त्ता—

डा० श्रीराम आर्य

॥ ओ३म् ॥

लेखक के दो शब्द

सौराष्ट्र प्रदेश से हमको एक आर्य सज्जन ने गोरखपुर उत्तर प्रदेश के मुनि समाज नाम के नवीन सम्प्रदाय के विषय में पत्र लिखा और बताया कि उस समाज से दो पुस्तकें परमार्थ प्रकाश' तथा मुनि समाज और आर्य समाज नाम से निकली हैं जिनमें बहुत असभ्यता पूर्वक महर्षि दयानन्द जी महाराज एवं उनके जगद्विख्यात महान, ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के ऊपर कीचड़ उछाली गई है। उन्हीं आर्य सज्जन ने हमें उपरोक्त पुस्तकें उपलब्ध कराई हैं। इन पुस्तकों को हमने आदि से अन्त तक देखा है। इनको देखकर कोई भी व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि इन का लेखक जो अपने को योगेश्वर मुनीश्वर लिखता है, साधारण पढ़ा लिखा, दम्भी, नाम चाहने का शौकीन, पैसा कमाने को नाना प्रकार के जाल रचने वाला, एक सम्प्रदाय चालू करके सम्प्रदाय प्रवर्तक बनने का इच्छुक, बड़ा घमन्डी, लालची हृदय में जलन व दूसरों से द्वेष रखने वाला, घोर पाखण्डी व्यक्ति है। उसे लेख लिखने की भी तमीज नहीं है। वह नहीं जानता है कि उस जैसे क्षुद्र प्राणी को अपने से भिन्न विचार रखने वाले महापुरुषों के लिये किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना चाहिये और या वह जानबूझ कर ऋषि दयानन्द जी महाराज एवं आर्य समाज को गालियाँ देने बैठा है ताकि उसके अन्य भक्त चेलों पर उसका प्रभाव बना रहे।

हम इस प्रकार के पाखण्डी व्यक्ति के लिए इसलिए इस भाषा का प्रयोग कर रहे हैं क्योंकि वह इसी भाषा का पात्र है।

वह ईश्वर को गालियां देता है। वेद को अपशब्द कहता है, ऋषि दयानन्द जी एवं आर्य समाजियों को गालियाँ देता है। उसकी भाषा, उसकी लेखन शैली, उसकी दलीलें उसे बुद्धिमान व्यक्ति सिद्ध नहीं करती हैं। उसकी पुस्तकों से सिद्ध है कि उसे वेद वैदिक धर्म की किसी भी बात को समझने की बुद्धि नहीं है। उसकी ऐसी ही मूर्खता पूर्ण बातों पर गोरखपुर के आर्य समाजियों ने उसकी धज्जियां उड़ाई हैं, अतः यह आर्य समाज से खिसिया गया है और रो रो कर गालियाँ देने बैठा है। हमारा विश्वास है कि सज्जनों के साथ सज्जनता से एवं दुष्ट, लम्पट एवं मूर्खों से 'नीति के 'शठे प्रति शाठ्यम कुर्यात्' के अनुसार ही व्यवहार करना चाहिए। सज्जनों के साथ दुष्टता एवं दुष्टों के साथ सज्जनता का व्यवहार करना, शास्त्रीय एवं लोक मर्यादा के विपरीत व्यवहार होगा। अतः इस पुस्तक में हम नीति के अनुसार ही इस विपक्षी के साथ व्यवहार करेंगे और उसे यह शिक्षा देंगे कि गलियां देने पर उसे एक के बदले सौ सौ सुननी पड़ेगीं। हाँ यदि वह कुछ पढ़ा लिखा है तो अपना पाण्डित्य सभ्यता पूर्ण वाद-विवाद में प्रगट करे, हम उसके विकृत मस्तिष्क का उपचार तब उसके ही अनुरूप भाषा में करेंगे। आशा है 'शठे शाठ्यम्' की नीति अपनाने के लिए पाठक हमें क्षमा करेंगे। हम आर्य समाज के विपक्षियों के साथ यथा योग्य व्यवहार करने के पक्षपाती हैं।

नोट—हम इस पुस्तक में परमार्थ प्रकाश व मुनि समाज और आर्य समाज के लेखक को विपक्षी शब्द से सन्बोधित करेंगे।

कासगंज (उ० प्र०) डा० श्रीराम आर्य
ता० २४-१२-६१



परमार्थ प्रकाश का उत्तर

अध्याय १

परमार्थ प्रकाश पुस्तक की पृष्ठ संख्या १४७ है। इसका काग़ज रफ अख़बारी है। इसका मूल्य लेखक ने ४) रख छोड़ा है। पुस्तक के अन्त में २५ पृष्ठ का लम्बी चौड़ी तारीफों से भरा पुस्तकों का विज्ञापन दिया है। मुख पृष्ठ पर अपना लम्बी सी माला पहिन कर चित्र दिया है। नीचे लेखक ने अपने नाम के साथ अपनी प्रशंसा में लिखा है 'योगेश्वर मुनीश्वर श्री शिव मुनि'। कवर के बाद दो पृष्ठ प्रारम्भ में अपनी पुस्तकों के विज्ञापन के छाप कर जोड़े हैं। दूसरे पृष्ठ पर विज्ञापन में लेखक लिखता है "मुनि समाज के प्रचारकों को चाहिए कि ६०) मनीआर्डर से भेज कर १००) की पुस्तकें मंगा लें और उन्हें पुस्तक पर लिखे हुए मूल्य पर बेच कर मुनि समाज का प्रचार करें और स्वयं भी ४०) प्रतिशत का लाभ उठावे।"

इससे स्पष्ट है कि लेखक का धन्धा जनता को गुमराह करना, अपने दलालों के द्वारा अपनी अन्धा धुन्ध मूल्य वाली ऊँट पटाँग पुस्तकें बिकवाना और पैसा कमाना है। इसके दलाल अपने को मुनि कहते हैं और पाखण्ड प्रचार की आड़ में प्रतिशत ४०) का अपना व्यापार तथा ६०) का अपने गुरु का धन्धा चलाते हैं।

कोई पागल भी संसार में अपने को मुनिवर, पंडित जी, श्रीमान या कोई आदर सूचक शब्द लगा कर सम्बोन्धित नहीं करता है। दूसरे लोग किसी के नाम के साथ प्रतिष्ठा के लिए कुछ भी लिख दें, यह दूसरी बात है। पर यह व्यक्ति अपने नाम के आगे 'योगेश्वर मुनीश्वर' शब्द स्वयं लिखता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह व्यक्ति किस प्रकार की विचार धारा रखता है। विपक्षी योगी भी नहीं बना, योगीश्वर बन बैठा। उस पर भी सन्तोष नहीं हुआ तो मुनि न बन के मुनीश्वर और बन गया। उस पर भी तबियत न भरी तो नाम से पहिले श्री शब्द भी लिख दिया। मुनीश्वर शब्द पर भी सन्तोष न हुआ तो आगे 'शिव' शब्द के साथ पुनः मुनि शब्द लिखा और इस प्रकार अपनी शान मारने को योगीश्वर, मुनिश्वर श्री शिवं मुनि इतनी लम्बी उपाधि युक्त नाम किताब पर छाप दिया ताकि उसके चेले दूसरों को बता सकें कि उनके ढोंगी गुरुजी बड़े भारी सिद्ध, तपस्वी परमात्मा हैं। योगीश्वर बन कर भी विपक्षी को पैसे से इतना भारी मोह है कि रद्दी काग़ज की १४७ पृष्ठ की किताब को ४) में बेचता है। किताब भी कोई नई नहीं है। अपने अखबार में छपे लेखों का संग्रह करके किताब बना दी है। जनता को सत्यज्ञान के प्रचार की आड़ में डंके की चोट १००) में ६०) खुद व ४०) उसके दलाल चेले लूटते फिरते हैं। यह है विपक्षी का प्रारम्भिक परिचय। अब हम विपक्षी की भाषा-तर्क-सिद्धान्त व प्रमाणों का खण्डन उपस्थित करते हैं।

परमार्थ प्रकाश का लेखक हमारा विपक्षी प्रथमाध्याय में सत्यार्थ प्रकाश के ऊपर आक्षेप करता हुआ लिखता है कि स्वामी दयानन्द ज़ी ने 'श्री सच्चिदानन्देश्वराय नमोनमः" तथा



"ओम शन्नो मित्रःशंवरुणाः" आदि लिखकर ईश्वर की जो प्रार्थना की है वह मजहबी लोगों का अनुकरण है और जबकि स्वामी जी ने स्वयं मंगला चरण करने का निषेध किया है तो फिर उन्होंने स्वयं उसके विपरीत मंगला चरण ग्रन्थारम्भ में क्यों किया है ?

हमारा उत्तर है कि विपक्षी के दिमाग में इतना अन्धकार कूट २ कर भरा हुआ है कि वह स्वामी जी की बात को समझने में असमर्थ है। स्वामी जी ने नमः शिवाय, भैरवाय नमः, आदि अवैदिक परम्पराओं का खण्डन करते हुए लिखा है। "इसलिए जो आधुनिक ग्रन्थों में "श्रीगणेशयनमः" "सीतारामाभ्यांनमः" "राधाकृष्णाभ्यां नमः" "श्रीगुरुचरणाविन्दाभ्यांनमः" "हनुमते नमः" "दुर्गायै नमः" "वटकाय नमः" "भैरवाय नमः" "शिवाय नमः" 'सरस्वत्यै नमः" "नारायणाय नमः" इत्यादि लेख देखने में आते हैं, इनको बुद्धिमान लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्या ही समझते हैं, क्योंकि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता।"

उपरोक्त लेख में स्वामी दयानन्द जी महाराज का भाव स्पष्ट है कि वे पौराणिक कल्पित देवताओं की स्तुति या उनको ग्रन्थारम्भ में अवैदिक प्रथा के विरुद्ध थे। उन्होंने आगे लिखा है:—

"और आर्य ग्रन्थों में ओ३म् तथा अथ शब्द तो देखने में आता है" इससे यह भी प्रगट है कि वे प्राचीन प्रथा के अनुसार 'ओ३म्' लिखने या 'ओ३म्' परमात्मा की स्तुति करने के समर्थक थे जो कि वैदिक आर्य परम्परा है। इसी के अनुसार स्वामी जी ने ग्रन्थारम्भ में परमेश्वर को "श्री सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः" तथा "शनो मित्रः शंवरुणः" आदि मन्त्रों से

स्तुति की है। यह वैदिक आर्य परम्परा है कि किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व एवं कार्य की समाप्ति पर वेद मतावलम्बी व्यक्ति जगत्पिता परमात्मा का स्मरण किया करते हैं। पर विपक्षी तो कोरा नास्तिक एवं स्वयं को ही ईश्वर बताने वाला है। वह ईश्वर प्रार्थना के महत्व को क्या समझेगा। वह न ईश्वर को मानता है, न वेदादि किसी भी शास्त्र पर विश्वास रखता है। अतः उसकी दृष्टि में स्वामी जी के लेख का महत्व हो ही क्या सकता है।

स्वामी जी से किसी ने प्रश्न किया कि—

प्रश्न—जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि मध्य और अन्त में मंगला चरण करते हैं, वैसे आपने कुछ भी लिखा न किया।

स्वामी जी उत्तर देते हैं—ऐसा हमको करना योग्य नहीं, क्यों कि जो आदि, मध्य और अन्त में मङ्गल करेगा तो उसके ग्रन्थ में आदि मध्य तथा अन्त के बीच में जो कुछ लेख होगा वह अमंगल ही रहेगा।"

इसमें स्वामी ने मंगल आचरण और अमङ्गल आचरण पर टिप्पणी की है। जिसका आचरण पुस्तक या किसी भी कार्य के प्रारम्भ-मध्य या अन्त में अच्छा होगा अर्थात् कहीं अच्छा होगा कहीं खराब होगा तो वह कार्य या पुस्तक दोष युक्त हो जावेगा। अतः प्रारम्भ व अन्त में मङ्गल (श्रेष्ठ) आचरण (व्यवहार) करने वाला सम्भव है बीच २ में अमंगल (खराब) आचरण (व्यवहार) न कर बैठे इसके लिए स्वामी जी लिखते हैं—

"मंगलाचरणं शिष्टाचारात फलदर्शनाच्छ्रुति तश्चेति" यह सांख्य शास्त्र (अ ५ सू १) का वचन है। इसका यह अभिप्राय है कि जो न्याय पक्षपात रहित सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा



है उसी का यथावत सर्वत्र और सदा आचरण करना मंगलाचरण कहाता है। ग्रन्थ के आरम्भ से लेकर समाप्ति पर्यन्त सत्याचार का करना ही मंगलाचरण है न कि कहीं मंगल और कहीं अमङ्गल लिखना ।"

स्वामीजी ने इस प्रश्नोत्तर में मङ्गलाचरण का अर्थ पक्षपात रहित, श्रेष्ठ, सत्य, न्याययुक्त व्यवहार तथा अमंगलाचरण का अर्थ उसके विपरीत व्यवहार करना बताया है स्वामी जी नेयह नहीं लिखा है कि कार्य या ग्रन्थारम्भ में ईश्वर की स्तुति न की जावे। उन्होंने पौराणिक गलत प्रकारों से स्तुति करने का निषेध अवश्य किया है। इस सरल और स्पष्ट बात को भी समझने की जिसमें अक़्ल न हो वह भी, पुस्तक लिखने के लिए क़लम उठा सकता है, योगीश्वर बनना चाहता है, यह कितना बड़ा पाखन्ड है।

विपक्षी घबड़ा कर नया कुतर्क पेश करते हुए शिव, गणेश आदि को ईश्वर के नाम बताता है जैसा कि स्वामी जी ने १०० नामों की व्याख्या में सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है और लिखता है कि "नमः शिवाय" या "श्री गणेशाय नमः" ईश्वर वाची है अतः स्वामी जी ने इनके लिखने का खन्डन करके भूल की है। पर विपक्षी पौराणिकों की विकालत करते समय भूल जाता है कि वैसा लिखने वाले त्रिशूल धारी, पार्वती के पति महादेव (शिवजी) तथा सूंड वाले गणेश जी की स्तुति उक्त वाक्यों से करते हैं। उनके चित्र भी देते हैं। यह त्रिशूल धारी बाघम्बर पहिनने वाले शिवजी व सूँड वाले लम्बोदर गणेश जी पौराणिकों की मान्यतानुसार वैदिक ईश्वर से भिन्न हैं।

विपक्षी अपनी मूर्खता प्रगट करते हुए लिखता है—

सबसे पहिले इस प्रथा का आविष्कार मुसलमानों ने अपनी

पुस्तकों के आदि में "बिस्मिल्लाहइर्रहमानर्रहीम" कह कर किया। इन्हीं लोगों के देखा देखी हिन्दुओं ने बिस्मिल्लाह 'गणेशायनमः' लिखना प्रारम्भ कर दिया। नहीं तो सच्ची बात यह है कि यहाँ के प्राचीन ऋषि मुनिगण इस तरह के ग्रन्थ आदि में ईश्वर या किसी देवता का नाम लिखकर उनको नमस्कार करके ग्रन्थारम्भ नहीं किया करते थे। स्वामी दयानन्द ने भी सत्यार्थ प्रकाश के आदि में मङ्गल चरण करके बहुत भूल की है।"

यह बात इतिहास से सिद्ध है कि पुराणों की रचना का प्रारम्भ प्रायः २००० वर्ष से होता है और उसी से कुछ पूर्व से गणेश आदि पौराणिक देवताओं की कल्पना व उनकी उपासना प्रारम्भ होती है। जब कि इस्लाम का प्रारम्भ हुए अभी पूरे १४०० साल भी नहीं हुए हैं। अतः 'नमः गणेश' को "बिस्मिल्लाहइर्रहमानर्रहीम" की नक़ल बताना विपक्षी की अयोग्यता का खुला प्रमाण है। वह साधारण इतिहास का भी जानकार नहींहै। स्वामी दयानन्दजी ने जो'शंन्नो मित्रः शंवरुणः' आदि से ग्रन्थारम्भ में ईश्वर स्तुति की है वह 'यजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद' की शिक्षा वल्ली प्रथम अनुवाक के प्रारम्भ की पहिली श्रुति है। इससे स्पष्ट है कि उपनिषदों के निर्माणकर्ता हमारे प्राचीन महर्षि गण जिस प्रकार ग्रन्थारम्भ में ईश्वर की स्तुति करते थे ऋषि दयानन्द जी महाराज ने उसी का अनुसरण किया है, कोई नई परम्परा चालू नहीं की है। उपनिषदों का निर्माण काल पुराणों की अपेक्षा बहुत प्राचीन है।

इससे आगे विपक्षी वेद एवं उनकी विषय के प्रतिपादन की शैली पर आक्षेप करता हुआ अपने अज्ञान का ढिंढोरा पीटता हुआ—

शंनो मित्र शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा ।
शन्न इन्द्रो ब्रहस्पतिः शंनो विष्णु रुरुक्रमः ॥(यजुर्वेद ३६/६)

इस मन्त्र पर आक्षेप करता है और लिखता है कि वेद यदि ईश्वर का बनाया हुआ होता तो उसमें मित्र, वरुण, विष्णु, आदि से ईश्वर अपने कल्याण की प्रार्थना क्यों करता, तथा मन्त्र में (नः) हम लोगों के लिए ऐसा क्यों लिखा होता। इससे यह सिद्ध है कि वेद ईश्वरोक्त न होकर मनुष्योंने बनाये हैं।

ऐसा ज्ञात होता है कि विरञ्जी को वैदिक धर्म की जानकारी शून्य के बराबर भी नहीं है। वह वैसे ही मूर्खों की मण्डली में तीसमारखां बनने चला है।

वेदों में ईश्वर के भिन्न २ गुणों को प्रगट करने के लिए भिन्न २ शब्दों का प्रयोग उसके नामों के लिए किया गया है। जैसा कि सत्यार्थ प्रकाश में दृष्टान्त के लिए ईश्वर के इन्हीं नामों की अन्य नामों के साथ व्याख्या करते हुए ऋषि दयानन्द जी महाराज ने सिद्ध किया है। वेद में ईश्वर के भिन्न २ नामों को देखकर भिन्न २ देवताओं के वर्णन की कल्पना करना अज्ञानता है। वेद की वर्णन शैली की यह विशेषता है कि उसके मन्त्रों का विनियोग प्रत्येक कर्म काण्ड में, उपदेश में-शिक्षा में, प्रार्थना में एवं प्रत्येक शुभ व्यवहार में होता है। राजा प्रजा को, गुरू शिष्य को, पुरोहित यजमान को, पति पत्नी को, छोटा बड़े को, बड़ा छोटे को, प्रजा राजा को, शिष्य गुरू को, ब्रह्मचारी आचार्य को, सेनापति सेना को तथा सेना सेनापति को, पत्नी पति को, पुत्र पिता को, पिता पुत्र को आदि सभी वेद के मन्त्रों में उपदेश दे सकते हैं, आदेश दे सकते हैं, प्रार्थना कर सकते हैं। संस्कारों में कर्म कांड में यथास्थान वेद के मन्त्रों का विनियोग करके कार्य किये जाते हैं व कराये जाते हैं। और इसीलिए जहाँ जैसा स्थल होता है वहां उसी प्रकार उसी शैली

में सम्बोधन करके अर्थ किये जाते हैं। वेद की इस शैली का सम्पूर्ण वेद भाष्यकारों ने अपने भाष्यों में प्रगट किया है।

अतः जहाँ मनुष्यों को उपासना, प्रार्थना स्तुति करने का प्रकार बताना वेद का इष्ट है वहां 'शन्नो मित्रः'—आदि प्रार्थना परक मन्त्रों का वेदों में वर्णन आता है और प्रार्थना करते समय वैदिक भक्त लोग वेद मन्त्रोंके द्वारा सूक्ष्म भाषा एवं भाव गम्भीर्यके साथ ईश्वर की प्रार्थना करतेहैं। 'शन्नो मित्र शंवरुणः' मन्त्र भी उसी प्रकार मनुष्यों द्वारा ईश्वर प्रार्थना के लिए वेद में आया है। वेद की यह वर्णन शैली न होकर केवल यही मन्त्र इस रूप में आया होता तब तो विपक्षी को हाय तोबा मचाने का अवसर मिल जाता। यह सम्पूर्ण वेदों के लगभग २०००० मन्त्रों की यही शैली है तो आक्षेप का अवसर नहीं आता है। पर विपक्षी तो पक्का नास्तिक व स्वयं सिद्ध ख़ुदा बनताहै। उसमें वेदकी इस बातको समझनेकी योग्यता कहां है?

आगे विपक्षी ईश्वर से भक्त की स्तुति, उपासना, प्रार्थना करने को ईश्वर की ख़ुशामद करना बताता है। वह स्तुति, प्रार्थना आदि का फल भो नहीं जानता है और स्वयं साक्षात् ब्रह्म बनने का दावेदार है। कितने आश्चर्य की बात है कि इस भारत में ऐसे २ आज्ञानी, पाखण्डी लोगों के भी लाग अन्ध विश्वास में भक्त बन जाते हैं। स्तुति कहते हैं किसी के गुणों को जानकर उसका वर्णन करना। भक्त जब प्रभु के प्रेम में गद्‌गद् होकर उसके गुणों का बारम्बार वर्णन करता है तो इससे भक्त की प्रभु में प्रीति उत्पन्न होकर तन्मयता की स्थिति पैदा होती है। उस समय भक्त अपने और अपने प्रभु में कोई भी अन्तर नहीं समझता है। वह एकात्मता का अनुभव करता है वह प्रभु के ध्यान में सर्वथा निमग्न हो जाता है। इसे उपासना कहते हैं। उपासना का अर्थ होता है उप=निकटता, आसना की स्थिति

प्राप्त करना। इस प्रकार स्तुति के बाद उपासना की स्थिति प्राप्त होने से भक्त में प्रभु के गुणों का समावेष होता है। भक्त के दुर्गुण, दुर्व्यसन दूर होते हैं, उसको सद्गुणों की प्राप्ति होती है। आग की उपासना से गर्मी प्राप्त होती है, जल की उपासना से सर्दी आती है, सज्जनों की उपासना से सद्गुण आते हैं तथा दुर्जन की उपासना से दुर्गुण जीवन में प्रवेश करते हैं। उपासक में उपास्य के गुणों का प्रवेश होता है यह उपासना का फल होता है। जब भक्त अपने प्रभु का उपासना में तन्मय हो लेता है तो स्वच्छ हृदयसे अपने प्रभुसे अपने कष्टों व अपनी न्यूनताओं के निवारण की प्रार्थना करता है। इससे उसमें निरभिमानता पैदा होती है, उसमें नम्रता आती है, उसमें सर्व व्यापक जगत नियन्ता प्रभु पर विश्वास होने से निर्भयता आती है। शुद्ध हृदय से की गई प्रार्थना सदैव फलवती होती है। इस प्रकार स्तुति-उपासना व प्रार्थना ईश्वर की खुशामद नहीं है, यह आत्मोन्नति एवम आत्म कल्याण का ईश्वर विश्वासी आस्तिक संसार का मार्ग है। पर कुछ लोग इतने अज्ञ होते हैं कि कार्य रूप जगत में नियम एवं व्यवस्था को देखते हुए भी जगतकर्ता विश्व को नियन्त्रण में रखने व चलाने वाले परमात्मा की सत्ता से इन्कार करते हैं। ऐसे लोग नास्तिक कहे जाते हैं। हमारे विपत्ती भी ऐसे ही लोगों में हैं। इसको अपनी चढ़ती जवानी के जोश में नेत्रों पर छाई हुई चरबी के कारण विश्व में परमात्मा की सत्ता ही नहीं दीखती है, अतः यह अपने को ही परमात्मा मान बैठे हैं।

इसके आगे विपत्ती अपने पाण्डित्य के दिवालियापन का प्रदर्शन करता हुआ लिखता है कि—

"नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो, त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि॥"

इसमे ब्रह्मणे पद का अर्थ ब्राह्मण है और 'वायो' पद का अर्थ भौतिक वायु है ब्राह्मण और वायु ही वास्तव में ब्रह्म हैं। अपने इस कुतर्क के समर्थन में विपक्षी वेद के चन्द मन्त्र प्रस्तुत करता है जिनमें ब्रह्मणे पद ब्राह्मण के लिए तथा वायोः पद भौतिक वायु के लिए प्रयुक्त हुए हैं। तथा बड़ी अहम्मन्यता के साथ अपने बारे में लिखता है "हमारे पाठकों को यह भी मालूम हो कि इस लेख का लेखक और रचयिता भी ब्राह्मण ही है"

विपक्षी ने उपनिषद के ब्रह्मणे पद का ब्राह्मण को नमस्ते करना अर्थ क्यों लगाया है यह उसी की कलम से ऊपर स्पष्ट हो गया। वह अपने को ब्राह्मण बताता है और अपने चेलों को यह बताना चाहता है कि वेद व उपनिषदों में उसी को व उसकी बिरादरी को नमस्ते आदि करने का आदेश है। पर उसने यह नहीं लिखा कि वह नाई बढ़ई आदि कौन ब्राह्मण है। विपक्षी कितनी दम्भा है, यह प्रगट है। उसके 'इस लेख का लेखक तथा रचियता दोनों पद एकार्थ वाची हैं, परन्तु शान दिखाने के लिए दोनों शब्दों का प्रयोग किया है जो कि उसकी भाषा सम्बन्धी अज्ञान व मूर्खता को प्रगट करता है।

विपक्षी कुछ अधिक पढ़ा लिखा व्यक्ति भी नहीं मालूम होता है अन्यथा उसने वेद में देखा होता कि—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः सः प्रजापतिः ॥(यजु० ३२/१)

अर्थात्—उसी परमात्मा का नाम अग्नि, आदित्य, वायु चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः तथा प्रजापति हैं।

इसमें वायु ब्रह्म यह दोनों नाम स्पष्टतया परमात्मा के लिए आये हैं। इसी प्रकार—

नमस्ते सतेते जगत्कारणाय, नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्वाय मुक्तिप्रदाय, नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥

अर्थात्—हे सदा रहने वाले, जगत के आदि कारण प्रभो! आपको हमारा नमस्कार हो। हे सब लोक लोकान्तरों के आश्रय हे चैतन्य स्वरूप प्रभो! आपको हमारा नमस्कार हो। हे सुखस्वरूप मुक्ति के दाता! आपको हम नमस्कार करते हैं। हे सर्व व्यापक, शाश्वत रहने वाले परम ब्रह्म! आपको हमारा नमस्कार हो।

इस में ब्रह्मणे पद जगत के आदि कारण, सम्पूर्ण लोकों के आश्रय मुक्ति के दाता, सुख स्वरूप, सर्वव्यापक, नित्य परमेश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ है। हमारा विपक्षी उपरोक्त में से एक भी गुण धारण नहीं करता है। वह तो साक्षात अवगुणों का भण्डार है। उसे भूख प्यास सर्दी गर्मी, दुख सुख, काम क्रोध पैसा पैदा करने एवं ६०% मुनाफे पर पुस्तकें बेचने की चिन्ता फोटो खिचाने नाम चाहने का शौक, योगीश्वर मुनीश्वर अपने को बताकर जनता की आंखों में धूल झोंकने की धुन शरीर को मोटा व पुष्ट बनाने की चिन्ता, फूलों का मोटाहार पहिन कर अपनी बदसूरत शक्ल को खूबसूरत बनाकर दिखाने का शौक, घोर अज्ञानी होने पर भी अपने को विद्वान सिद्ध करने का चस्का, ऋषिदयानन्द व आर्य समाज को गाली देने का पागलपन, एक देशीय छोटा सा शरीर पांच मन वज़न भी न उठा सकने की शारीरिक कमजोरी, खांसी जुखाम, बदहज्मी आदि की बीमारियां, शरीर के बन्धन का दोष आदि सैकड़ों दोष उसमें हर समय व्याप्त रहते हैं। वह ब्रह्म नहीं बन सकता है। यदि कोई अपने को वेद एवं उपनिषद में वर्णित ब्रह्म कहता है तो वह पक्का झूठा एवं धूर्त है वह लोगों को धोखा देता है। जब उसमें ब्रह्म का कोई भी गुण वर्तमान नहीं है तो वह साधारण कोटि

का जीव ही हो सकता है, ब्रह्म नहीं। यह ठीक है कि अग्नि, वायु एवम् ब्रह्मणे शब्द भौतिक अग्नि, वायु तथा ब्राह्मण के लिए भी प्रयुक्त होते हैं, पर प्रकरण के अनुसार उनके अर्थ किये जाते हैं। विपक्षी तो अपने को ब्रह्म बताने के लिए ईश्वर परक शब्दों का प्रकरण विरुद्ध अर्थ करके ब्रह्मणे का अर्थ ब्राह्मण बताने का पाखण्ड रच रहा है। अतः हमने इस प्रकरण में सिद्ध किया है कि विपक्षी का यह लिखना सर्वथा झूठ एवम् मक्कारी से भरा हुआ है. किः—

"स्वामी दयानन्द ने दूसरे मजहबी लोगों की तरह अपने मन्तव्य के विरुद्ध होते हुए भी साँसारिक वायु आदि देवताओं की प्रार्थना की है। इस तरह सत्यार्थ प्रकाश में शुरू से अन्त तक सत्यार्थ नहीं किन्तु झूठार्थ प्रकाश किया गया है।"

स्वामी दयानंद के लेख के समझने के लिये शुद्ध बुद्धि एवम् विशेष ज्ञान की आवश्यकता है। हमें खेद है कि विपक्षी इतना पढ़ा लिखा नहीं है जो स्वामी दयानन्द की बात को समझ सके।। वह अभी कुछ दिन पढ़ ले तो उत्तम होगा। अथवा गोरखपुर की आर्य समाज में चपरासी के रूप में सेवा कार्य करे तो आर्यों के सत्सङ्ग एवं उनकी कृपा से उसे वैदिक सिद्धांतों की जानकारी प्राप्त हो जाएगी। अन्यथा वह सारे जीवन अपने झूठे ब्रह्मपने के नशे में ठोकरें खाता रहेगा।

अध्याय २

अपनी पुस्तक के दूसरे अध्याय में वादी सत्यार्थ प्रकाश के निम्न वाक्य को उपस्थित करता है।

"उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितं याचत इति बाधित न्यायः"

इसके आधार पर विपक्षी लिखता है कि उपस्थित अपनी आत्मा को छोड़कर निराकार अप्रत्यक्ष अशरीरी ईश्वर के पीछे पड़ना उपासना में जन्म बिताना कहां का न्याय है।

हम विपक्षी से पूछते हैं कि आत्मा प्रत्यक्ष है उसका क्या प्रमाण है। क्या विपक्षी आत्मा को प्रत्यक्ष कर या करा सकता है? विपक्षी प्रत्यक्ष के लिए दलील देता है और लिखता है—

"इन्द्रियार्थं सन्नि कर्षोत्पन्नं ज्ञान मव्यदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।" इन्द्रिय और अर्थ के सम्बन्ध से जो ज्ञान उत्पन्न हो और जिसमें व्यभिचारि दोष न हो, और किसी प्रकार का सन्देह भी न हो, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। मज़हबी ईश्वर जो इस तरह से किसी इन्द्रिय के सम्बन्ध से या किसी इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता""वह प्रत्यक्ष नहीं कहला सकता है।"

उपरोक्त विपक्षी के तर्क के आधार पर यदि विपक्षी को इन्द्रियातीत ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है तो विपक्षी का जीवात्मा भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है। जब परमात्मा पंच-भौतिक नहीं है तो जीवात्मा भी पंचभौतिक नहीं है। शारीरिक इन्द्रियां तो पंचभौतिक पदार्थों के रूप—रस—गन्ध स्पर्श और शब्दों का ग्रहण मात्र कर सकती है जो कि पंच भूतों के गुण हैं। और इन पंच तन्मात्राओं के ग्रहण से प्राणी वस्तु के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है कि अमुक वस्तु ऐसी है। पर जो

पंचभूतों से परे आत्मा व परमात्मा हैं और जो पञ्चभूतों के गुण रूप-रस स्पर्श-गन्ध, एवं शब्दों को धारण नहीं करते हैं, उनको विपक्षी इन्द्रियों से कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगा।

जिस प्रकार गुणों की अपेक्षा से इन्द्रियां किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त कराती हैं, जिस प्रकार धूम्र को देखकर अग्नि का, शीत को अनुभव करके जल का अनुमान एवं प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, शरीर गत ज्ञान वान चेतना को अनुभव करके चैतन्य जीवात्मा के अस्तित्व का अनुमान पूर्वक प्रत्यक्ष होना है, जिस प्रकार मकान को देखकर मकान बनाने वाले का, छपी हुई पुस्तक को देखकर पुस्तक को लिखने व छापने वाले का प्रत्यक्ष होना है, उसी प्रकार जड़ जगत के ज्ञान पूर्वक पदार्दों का निर्माण देखकर ज्ञानवान सर्वं व्यापक सर्व शक्तिमान परमेश्वर के कर्ता होने का एवं उसकी महान शक्ति का प्रत्यक्ष होता है। जब विपक्षी की घुटी चांद को देखकर नाई का एवं बुने व सिले हुए वस्त्रों को देखकर बुनने वाले व दर्जी का प्रत्यक्ष होता है तो फूल व पत्तियों के कटाव, उनके निर्माण, उनमें नस नाड़ियों के ताने वाने को देखकर उनके बनाने वाले परमेश्वर का प्रत्यक्ष बुद्धिमानों को हो जाता है। प्रत्यक्ष का अर्थ केवल यही नहीं होता है कि आंखों से ही जो वस्तु देखी जा सके उसे ही प्रत्यक्ष कहते हैं। इस प्रकार अनन्त विश्व के स्वामी अनन्त समर्थवान का नाम ईश्वर (ईश=स्वामी, वर=श्रेष्ठ) होता है। ईश्वर शब्द को छोटे रूप में प्रयुक्त करने से दिल्लीश=दिल्ली का स्वामी, राजेश्वर=राजाओं में श्रेष्ठ स्वामी या सामर्थ वाला आदि हो जाते हैं। जिस प्रकार पंडित शब्द का अर्थ विद्वान होता है और यह इसका व्यापक अर्थ होता है। किन्तु व्याकरण का पंडित कहने से केवल एक विषय का विद्वान अर्थ

होने से पंडित शब्द संकुचित अर्थ में आता है। इसी प्रकार ईश्वर शब्द व्यापाक रूप में परमेश्वर के लिए प्रयुक्त होता है। योगीश्वर अथवा-मुनीश्वर अथवा मूर्खेश्वर शब्द संकुचित अर्थों का द्योतक होता है। जैसा कि विपक्षी स्वयं के नाम के साथ योगीश्वरादि लिखता है।

विपक्षी लिखता है कि ब्राह्मण प्रत्यक्ष ब्रह्म होता है। हम कहते हैं, विपक्षी झूठ बोलता है। विपक्षी बतावें कि इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं' के सूत्र के अनुसार ब्राह्मण को कौन सी इन्द्रिय का विषय है क्या ब्राह्मण को जीभ से चख के नाक से सूंघ के, आंख से काला पीला सफेद रूप रंग देख के, त्वचा से गर्म-ठन्डा आदि छू कर, कान से हल्का तेज या मध्यम शब्द में सुनकर जाना जा सकता है कि यह ब्राह्मण है ठाकुर है या भंगी है। क्या पंच ज्ञानेन्द्रियों से जानने से विपक्षी के और महाशूद्र में कोई भेद मालूम किया जा सकता है। जब इन्द्रयों से ब्राह्मण का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है तो फिर ब्राह्मण प्रत्यक्ष ब्रह्म तो नहीं रह जाता है। अनुमान से जानने की बात विपक्षी को स्वीकार नहीं है। और यदि है तो उसी तर्क से जगत के आधार परमेश्वर की सत्ता को भी प्रत्यक्ष मानना पड़ेगा। और इस प्रकार विपक्षी का सारा पाखण्ड चूर चूर हो जावेगा।

प्राचीन ऋषि महर्षि एवं ऋषि दयानन्द जी महाराज उसी सर्वशक्ति मान इन्द्रियों के अगोचर, पंचभूतों से परे सर्वव्यापक सर्वाधार ब्रह्म की उपासना करते हुए कहते थे।

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि' अर्थात् हे परमेश्वर तुमको हम प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि तुम ब्रह्म हो, हम तुम को साक्षात ब्रह्म जानते हैं। और ऋषियों एवं उपनिषतकारों का ऐसा कहना सत्य था। पर विपक्षी जब आत्मा होने पर अपने को ब्रह्म

मानता है तो ठीक विपक्षी जैसी आत्मा वाले होने से कुत्ते-बिल्ली आदि जंगली जानवर भी साक्षात ब्रह्म हुए। तब तो पाखाना खाने वाले सुअर व कुत्ते में तथा विपक्षी में कोई अन्तर नहीं रहेगा। टट्टी का कीड़ा व विष्टा भोजी श्वान विपक्षी के भाई बन्धु होजावेंगे। बिपक्षी का कुनवा बहुत बढ़ जावेगा।

विपक्षी उपनिषद् के एक वाक्य अयमात्मा ब्रह्म होने में प्रमाणभूत प्रस्तुत करता है। पर इससे विपक्षी को चोर होना सिद्ध हो जाता है। शायद विपक्षी ने माण्डक्योपनिषत को स्वयं पढ़ा नहीं है और या वह जान बूझकर शरारत करने बैठा है। उपनिषद् में 'अयमात्मा ब्रह्म' पद का प्रयोग निम्न प्रकार है।

ओमित्येतदक्षरमिद ँ सर्वं तस्योप व्याख्यानभूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव॥ १॥

अर्थ—यह जो कुछ दीखता है सब ओंकार की ही विभूति है। उसका व्याख्यान प्रारम्भ करते हैं, भूत, भविष्यत और वर्तमान काल सब ओंकार को ही प्रकाशित कर रहे हैं और जो तीनों कालों से परे है वह भी ओंकार ही है।१।

सर्वं ँ ह्येतद् ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म सो अयमात्मा चतुष्पात्॥२॥

अर्थ—जिसका नाम ऊपर ओ३म् कहा है उसका वाच्य सब ब्रह्म है। ओ३म् नाम वाली यह विश्व व्यापी आत्मा ही ब्रह्म है। यह ब्रह्म चार पाद वाला है।

उपनिषद में ब्रह्म की सम्पत्ति का चार पादों में वर्णन किया गया है। आगे लिखा है—

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषो अन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययोहि भूतानाम्॥६॥

यही ब्रह्म परमेश्वर सबका स्वामी है, सर्वज्ञ है, यही अन्तर्यामी यही सब चराचर जगत का कारण है, और सब पदार्थों की उत्पत्ति और प्रलय का मुख्य आधार है।

(माण्डूक्योपनिषत्)

ऊपर के उपनिनद् के वर्णन से स्पष्ट है कि उपनिषद्कार ओंकार वाची सर्वाधार-सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, सर्वज्ञ एवम् सम्पूर्ण विश्व के आदि कारण परब्रह्म परमात्मा का वर्णन कर रहा है और उसी सिलसिले में ब्रह्म को बताने के लिए उसने श्रुति के मध्य में 'अयमात्मा ब्रह्म' अर्थात् यह परमात्मा ही ब्रह्म है। कहा है। परन्तु विपक्षी को तो शरारत करनी इष्ट थी। अतः उसने पूर्वा पर प्रसंगको चोरी करके केवल 'अयमात्मा ब्रह्म' पद लेकर अपने को ब्रह्म बता दिया। इसे ही पाखण्ड कहा जाता है।

अध्याय ३

अपनी इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में विपक्षी ने अपनी अक्ल का दिवाला निकाल दिया है। इस अध्याय से सर्वथा स्पष्ट है कि उसमें धार्मिक सिद्धान्तों को समझने की योग्यता का सर्वथा अभाव है। उसने न तो कुछ जिन्दगी में पढ़ा लिखा है और न उसे कभी विद्वानों का सत्संग ही प्राप्त हुआ। उसका सम्पर्क मूर्खों से रहा है और उसी का परिणाम है कि उसे स्वयं ईश्वर बनने की मूर्खता सवार है। हम उसके कुतर्कों का उत्तार देते हैं इससे विपक्षी अपना अज्ञान दूर कर सकेगा। विपक्षी ने जो ऊँटपटाँग बकवास इस अध्याय में की है उसे छोड़ते हुए हम उसके मुख्य आक्षेपों का उत्तर देते हैं। विपक्षी का आक्षेप है कि प्रारम्भ सृष्टि में ईश्वर ने अमैथुनी सृष्टि में युवा स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी आदि कैसे पैदा कर दिए ? इस विषय पर उसने इस सिद्धान्त की एवं ईश्वर की मजाक उड़ाई है, एवं ऋषि दयानन्द के लिए अप-शब्दों का प्रयोग किया है। विपक्षी इतना अज्ञानी है कि ईश्वर के अस्तित्व को भी समझने में असमर्थ है। हम विपक्षी के स्वयं ईश्वर बनने पर उससे पूँछते हैं कि क्या वह अपनी आत्मा को शरीर में से निकाल कर पुनः उसमें प्रविष्ट करा सकता है। क्या विपक्षी अपने शरीर के एक उखड़े हुए बाल को पुनः उसी स्थान पर जोड़ सकता है ? यदि हम विपक्षी की दोनों आंखें फोड़ दें तो क्या वह ईश्वर होने से दूसरी आंखें बना सकता है ? यदि हम विपक्षी की नाक काट लेवें तो क्या वह दूसरी नाक अपने शरीर में बना लेगा या उसी नाक को वहां जोड़ सकेगा ? यदि हम विपक्षी को १ तोला संखिया या जमाल-

गोटा खिला दें तो क्या विपक्षी बिना लाग के उसे हजम कर सकेगा ? क्या विपक्षी घास का एक पत्ता भी अपने हाथों से बना सकता है ? क्या वह अपने शरीर गत नस नाड़ियों एवं आन्तरिक अङ्गों में होने वाली क्रियाओं की भी जानकारी रख सकता है ? क्या विपक्षी दूसरे के हृदय की बात को भी बिना उससे पूंछे जानने की सामर्थ रखता है ? यदि नहीं तो विपक्षी ईश्वरत्व का दम कैसे भरता है। विपक्षी भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, दुःख-सुख, हर्ष-शोक एवं रोगादि से पीड़ित रहता फिरता है, बीमार पड़ने पर दवायें खाता है, डाक्टर वैद्यों की शरण में जाता है कभी हंसता है, कभी रोता है, कभी आंख मूंदकर किसी अपने से भिन्न शक्ति का ध्यान करता है। विपक्षी ९ महीने मां के पेट में बन्द पड़ा रहा, बचपन में मल मूत्र से सना फिरता था, बराबर के बच्चे चांटे लगाते थे, तो ऐसा कमजोर व्यक्ति ईश्वर कैसे बन सकता है ? १ विपक्षी बिना पढ़े विद्वान क्यों नहीं बन गया ? विपक्षी से १० मन का बोझा उठ तक नहीं सकता है, पर विपक्षी ईश्वर बनने का दावेदार अवश्य है। काम, क्रोध, लोभ, मोह में फँसा दूसरों को गाली बकने वाला कोई मूर्ख व्यक्ति ही ईश्वर की सत्ता से इन्कार कर सकता है।

जिस प्रभु ने अनन्त विश्व को उत्पन्न किया, अनन्त विश्व का धारण, पालन एवं पोषण करता है, जिसके नियमों के अन्दर सम्पूर्ण विश्व के लोक लोकान्तर शून्य आकाश में निराधार स्थित हुए गतिमान हो रहे हैं, जिसके नियमों को जानने के लियें विश्व के वैज्ञानिक रात दिन लगे हुए श्रम करते रहते हैं, जिस प्रभु के एक भी कार्य के विज्ञान को पूर्णतया मानव कभी जान नहीं पाया है, गुलाब का फूल, जामुन का पत्ता किन २ नियमों के आधार पर किस २ प्रकार की बिना मशीनों के सहयोग के रसायनिक परिवर्तनों के द्वारा निर्माण किये जाते हैं, किस प्रकार उनमें नस नाड़ियों का समावेष होता है, वायु में से आवश्यक तत्व आकर्षित करने के लिये पत्तों में व्यवस्था कैसे की जाती

है, उनकी आकृति एक ही प्रकार की कैसे बनती है, उनमें जल एवं अन्य आवश्यक पदार्थों का संरक्षण कैसे होता है, एक छोटे से बीज में बड़ के विशाल वृक्ष को उत्पन्न करने की क्षमता, उस महान वृक्ष के सम्पूर्ण तत्व अत्यन्त सूक्ष्म रूप से उस छोटे से बीज में किस प्रकार समाविष्ट रहते हैं, अनार के फल में ऊपर विज्ञान युक्त छिलका, उसके अन्दर झिल्ली, उसके अन्दर दाने, दानों में झिल्ली और झिल्ली के अन्दर सैकड़ों गुणों से युक्त जलीय द्रव, उसके भी अन्दर बीज और उस बीज के अन्दर सम्पूर्ण अनार के वृक्ष को उत्पन्न करने के एवं उसके गुणों को धारण करने के गुण क्या यह सब विपक्षी बैठा २ बनाया करता है ? यह सारे विश्व के रचना कार्य जो अत्यन्त सूक्ष्म रूप में, अत्यन्त ज्ञान विज्ञान युक्त प्रति क्षण हो रहे हैं अपने सर्व शक्तिमान, अनन्त ज्ञानी, अत्यन्त सूक्ष्म निराधार सर्व व्यापक परमात्मा के अस्तित्व को प्रगट कर रहे हैं। ज्ञान पूर्वक क्रिया ज्ञानवान कर्ता को बताती है। किसी भी वस्तु के अन्दर विनय पूर्वक कार्य-नियामक कर्ता को प्रगट करते हैं। भिन्न २ प्रकार की वस्तुओं में नियम पूर्वक बनाई गई आकृतियां कर्ता के ज्ञान को प्रगट करती हैं। यदि हम विपक्षी का गला मरोड़ कर मार दें तो विपक्षी का शरीर से निकला हुआ आत्मा उस मृतक शरीर में नहीं आ सकेगा, सम्पूर्ण शरीर का खून निकल जाने के बाद विपक्षी जीवित नहीं रह सकेगा यह जगनियन्ता परमेश्वर का नियम है। आँख से देखना व नाक से सूँघना ईश्वर की व्यवस्था प्राणियों के शरीर में होती है। विपक्षी भी इसी में बँधा है। क्या विपक्षी आंख से सूँघने एवं नाक से देखने का कार्य ले सकता है ? जब विपक्षी स्वयं ईश्वर के नियमों में जकड़ा पड़ा है तो वह ईश्वर के अस्तित्व को मानने पर बाध्य होगा। यह बात दूसरी है कि जैसे जंजीरों में कसा हुआ कैदी पुलिस कोतवाल को गाली देता है वैसे ही विपक्षी भी खिसिया खिसिया कर ईश्वर व उसके मानने वालों को गाली बकता हो।

जगत की ज्ञान विज्ञान मयी रचना को देखकर जब परमेश्वर का अस्तित्व सिद्ध है और परमाणुओं के संयोग से उत्पन्न होने से। पृथ्वी आदि लोकों का उत्पन्न होना भी सिद्ध है तो फिर यह प्रश्न उठता है कि जव सृष्टि की रचना की गई तो सबसे पहिले बिना माता पिता के मनुष्यादि प्राणियों एवं वृक्षादि वनस्पति जगत की उत्पति कैसे हुई। क्योंकि पहिले बीज होता है उससे वृक्ष बनता है और वृक्ष से बीज पैदा होता है अतः दोनों के पहिले कौन था वृक्ष या बीज ? इसी प्रकार बिना माता पिता के सन्तान कैसे हो गई ? यह प्रश्न बहुधा प्रारम्भ सृष्टि के लिए उपस्थिति किए जाते हैं। सत्यार्थ प्रकाश में इन प्रश्नों पर विचार किया गया है। यह महान दार्शनिक महर्षि दयानन्द जी महाराज ने इसका उत्तर दिया है कि पहिले बीज था क्योंकि बीज से बढ़कर वृक्ष होता है। यही ईश्वरीय नियम सर्वत्र है। और उस बीज का निर्माण ईश्वर ने किया था और उसके विकास से वानस्पतिक जगत उत्पन्न हुआ। पश्चात् वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष पैदा होने का क्रम चला था। इसी प्रकार प्राणी जगत में प्रारम्भिक सृष्टि में सांचा रूप सृष्टि ईश्वर ने उत्पन्न की थी। प्राणियों का गर्भ पृथ्वी ने धारण किया था। जिस प्रकार आज भी हम वर्षा ऋतु में अनेक प्रकार के वीरबहूटी आदि प्राणियों का गर्भ पृथ्वी के ऊपरी हल्के परत के अन्दर धारण हुए देखते हैं, असंख्य प्रकार के पतंगे आदि कीट जो उड़ते हुए दिखाई देते हैं। उनका प्रारम्भिक गर्भ सूक्ष्म रूप में ही होता है। जब वे गर्भ स्थल में बड़े होकर युवाशक्ति सम्पन्न हो जाते हैं तो अपने उस स्थान से बाहर आकर विचरते हैं। हमने स्वयं वीरबहूटी को पृथ्वी के मिट्टी के हल्के परत के नीचे उत्पन्न होकर बड़ी होने पर मिट्टी को हटा कर बाहर आते देखा है। अमैथुनी सृष्टि में प्रारम्भिक मानव का भी गर्भ भूमि माता ने धारण किया था। और इसीलिए पृथ्वी को माता कहते हैं क्योंकि वह हमारे सर्व प्रथम पूर्वजों की माता

थी। पृथ्वी अपने अन्दर धारण किए हुए प्राणियों के अमैथुनी सृष्टि के गर्भ को रसों से पोषण करती है और तब तक करती है कि जब तक कि वह युवाशक्ति सम्पन्न (युवक) न हो जावे तथा बाहर आकर अन्न औषधियों पर स्वयं विचर कर अपना जीवनयापन करने योग्य न हो जावे। सम्पूर्ण प्राणियों एवं मानव के सर्व प्रथम पूर्वजों का भी पृथ्वी ने गर्भ धारण किया था और वे सभी उसके गर्भ में तव तक रहे जव तक कि वे युवाशक्ति सम्पन्न न हो गए। ऋषि दयानन्दजी महाराज ने उन्हीं को उस अवस्था में वाहर आने को युवा अवस्था में उत्पन्न होना कहा है जैसे कि गर्भस्थ बालक के गर्भ से वाहर आने पर ही वालक का पैदा होना कहा जाता है।

अमैथुनी प्रारम्भिक सृष्टि के पश्चात् मैथुनी सृष्टि का क्रम चालू होता है जैसा कि आज भी पहिले अनेक जीव बरसात में मैंढक वीरबहूटी आदि पैदा होते हैं और बाद को मैथुनी क्रम चलता है। मनुष्य पशु, पक्षी आदि कुछ श्रेणियां प्राणी जगत में ऐसी हैं, जिनकी अमैथुनी सृष्टि के प्रारम्भ में ही होती है, बाद को नहीं जबकि अन्य अनेक प्राणियों की सदैव देखने में आती है। जो परमेश्वर अनन्त विश्व की रचना करता है उसके लिए क्षुद्र मानव की अमैथुनी सृष्टि करना अथवा वानस्पति जंगत का बीज पैदा करना कोई बड़ा कार्य नहीं होता है।

विपक्षी बार २ पूछता है कि क्या गधे भी ईश्वर से पैदा हुए हैं? हमारा उत्तर है कि हमारे सभी विपक्षी गधे भी ईश्वर ने उत्पन्न किये हैं। विपक्षी ने लिखा है कि स्वामी जी ने लिखा है "मेरे माता पिता न थे ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूं—ऐसी असम्भव बात पागलों की सी है"—विपक्षी इस पर उपहास करता है। वह समझ नहीं सकता है कि ऋषी की यह बात उस समय के लोगों के लिये है जब मैथुनी सृष्टि चालू है। यदि ईश्वर वनाने की धुन में विपक्षी यह कहने लगे कि मैं विना मां बाप के ऐसे ही उत्पन्न हुआ हूँ। गर्भ में नहीं रहा हूं तो

निश्चय पूर्वक उसकी ऐसी असम्भव बात इस चालू मैथुनी सृष्टि क्रम में पागलपन की होगी। विपक्षी सत्यार्थ प्रकाश से भागवत का निम्न उद्धरण पेश करता है :—

कश्यप के १३ स्त्रियां थीं। उनमें दिति से दैत्य, दनु से दानव, अदिति से आदित्य, वनिता से पक्षी, कद्रू से सर्प, सरमा से कुत्ते, स्यार आदि और अन्य स्त्रियों से हाथी, घोड़े, ऊँट, गधा, भैंसा घास फूँस बबूर आदि वृक्ष कांटे सहित उत्पन्न हो गये।' इस पर विपक्षी लिखता है "यह लेख भागवत में कहाँ है, यह सत्यार्थ प्रकाश में नहीं दिया है। जब सबका पता है तो इसका पता क्यों नहीं दिया? पता न देने से यह प्रगट है कि अवश्य दाल में काला है। .... आप ही सोचें कि सृष्टि की आदि में यदि भगवान से गधे, घास फूँस, भैंसा हाथी और ऊँट हो सकते हैं तो कश्यप की स्त्रियों से क्यों नहीं हो सकते। .... ईश्वर से मनुष्य का शरीर कैसे उत्पन्न हुआ। .... निराधार ईश्वर से साकार गधा और इतना बड़ा साकार हाथी या साकार मनुष्य कैसे उत्पन्न होगा।" इसी प्रकार की बहुत कुछ बकवास विपक्षी ने की है।

विपक्षी ने भागवत को खोलकर भी नहीं देखा है। वह ईश्वर बनने का दावेदार तो है पर इतनी भी अक्ल नहीं है जो यह भी जान लेता कि उक्त उद्धरण भागवत के किस स्थल पर है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह ईश्वरपने का कोरा ढोंग बनाये बैठा है। सत्यार्थ प्रकाश का उक्त स्थल भागवत स्कन्द ६ अ० ६ में श्लोक ३१ से ३५ तक में विस्तार से दिया है। यदि विपक्षी अपना अज्ञान मिटाना चाहे तो वहां देख लेवे अथवा पुराणों के प्रचारक गीता प्रेस वालों से पूछ लेवें। स्वामी जी ने ठीक ही लिखा है कि स्त्रियां, घोड़ा, गधा, सांप हाथी, ऊँट, घास फूँस का प्रसव नहीं किया करती हैं। (हां यदि विपक्षी की चेला मण्डली की स्त्रियां इनका प्रसव किया

करती हों तो हम नहीं जानते) इन सबकी उत्पत्ति प्रारम्भ सृष्टि में जिस प्रकार होती है वह हम पहिले बता चुके हैं। ईश्वर इनको संसार में उत्पन्न करता है। विपक्षी उत्पन्न करने का अर्थ प्रसव करना समझता है। यह उसकी बुद्धि की बलिहारी है। विपक्षी ने १०००) रु० पैदा किये हैं तो क्या इसका अर्थ यह होगा कि विपक्षी के शरीर में किसी उसके चेले ने गर्भाधान किया और विपक्षी ने अपने गर्भ में से १०००)प्रसव कर दिये। अथवा 'विपक्षी ने मेहनत करके ज्ञान शक्ति प्रेस तथा दो सौ अन्ध भक्त चेले पैदा किये हैं" तो क्या इसका भी अर्थ यह होगा कि प्रेस की लोहे की लंबी चौड़ी मशीनें व उसके साधू चेले जो ईश्वर बन कर लोगों को ४०% कमीशन पर ठगते फिरते हैं विपक्षी ने अपने शरीर में से प्रसव करके निकाल डाले हैं? यदि विपक्षी का तर्क ठीक है तो हमारा भी तर्क ठीक हो सकता है। यह ठीक है कि बाद की मैथुनी सृष्टि में गधे से गधा व मनुष्य से मनुष्य पैदा होता है, पर ईश्वर तो सारे विश्व को उत्पन्न करने वाला निमित्त कारण है। माता पिता सन्तान के निमित्त एवं सन्तान के शरीर के निर्माण में उनके शरीर उपादान कारण होते हैं। इसी प्रकार जगत की उत्पत्ति में ईश्वर निमित्त कारण होता है व शरीरों की रचना में प्रकृति उपादान कारण होती है। शरीरों की रचना के सम्पूर्ण तत्व सृष्टि में विद्यमान रहते हैं। ईश्वर उनसे प्राणियों के शरीरों की रचना के लिए आवश्यक व्यवस्था कर देता है। जैसा कि आज की वर्षा में असंख्य प्राणियों की उत्पत्ति देखकर समझा जा सकता है। अतः विपक्षी की बकवास व्यर्थ है। विपक्षी गधों में बहुत घिरा हुआ प्रतीत होता है तभी बार २ वह गधों की उत्पत्ति की बात पूछ रहा है। बात बात

में उसके मुँह में से गधा ही निकलता सुनाई देता है। हम उसे बताना चाहते हैं कि विपक्षी और उसके कमाऊ गधे सभी ईश्वर द्वारा उत्पन्नकिये गये हैं।

कार्य अर्थात् बनी हुई प्रत्येक वस्तु का लक्षण होता है कि उसमें परमाणुओं का संयोग और वियोग पाया जाय। जिस वस्तु में संयोग होता है, वह किसी समय विशेष पर उत्पन्न हुई है। अतः अनादि नहीं हो सकती। हमारी सृष्टि भी परमाणुओं के संयोग से बनी होने से जब परमाणुओं का संयोग विधाता ने किया था तब उत्पन्न हुई थी। संयोग जन्य पदार्थ सभी नाशवान भी होते हैं। जिन परमाणुओं में, जिस पदार्थ में जिस समय तक संयुक्त रहने की शक्ति होती है उतने समय तक वह पदार्थ स्थिर रहता है। उसके पश्चात् वह परमाणु बिखरने लगते हैं और वह पदार्थ उस स्वरूप में नष्ट हो जाता है। हमारी सष्टि भी एक निश्चित समय तक वर्तमान स्वरूप में स्थिर रहने के पश्चात् विनष्ट हो जाती है। सृष्टि शब्द का शब्दार्थ भी उत्पन्न होने वाली है। जगत शब्द का अर्थ है (ज=उत्पन्न होना, गत=नष्ट होना) उत्पन्न होकर नष्ट होने वाला। अतः सिद्ध है कि हमारी पृथ्वी कभी न कभी उत्पन्न हुई थी और इस पर सम्पूर्ण प्राणी–अप्राणी जगत उसके बाद उत्पन्न किया गया। कोई भी पदार्थ जब उत्पन्न होता है तो उसको उत्पन्न करने वाला निमित्त कारण अवश्य होताहै। फिर चाहे वह निमित्त कारण किसी ने देखा हो न देखा हो। बिना कर्त्ता के कोई भी कार्य नहीं होता है। तो फिर जब किसी सर्व शक्तिमान महान कर्ता ने जो जगत रचना से पूर्व वर्तमान था जगत को बनाया तो उसी ने जगत में उत्पत्ति का क्रम चलाने के लिए प्रारम्भिक सांचा रूप प्राणी–अप्राणी जगत की रचना

की थी। जिससे बाद को मैथुनी क्रम द्वारा प्राणी जगत में एवं बीज से वृक्ष व वृक्ष से बीज बनते रहने का सृष्टि क्रम अब तक चला आ रहा है। यह सब सृष्टि के नियम के अन्तर्गत आता है। हां, ईसामसीह का क्वारी से बिना माता पिता के जन्म तथा घड़े से अगस्त ऋषि के जन्म की कथायें अवश्य ठीक ऐसी ही गल्पें हैं जैसी कि विपक्षी के गर्भाशय में से प्रसव ;हो र ज्ञान शक्ति प्रेस की मशीनें निकल आना। इसके आगे विपक्षी अपनी अज्ञानता का ढोल पीटता है और लिखता है कि:—

"यजुर्वेद का भास्य करते हुए स्वामी दयानन्दजी ने भी तीसरे अध्याय के ६२ वें मन्त्र का अर्थ करते हुए कश्यप का अर्थ ईश्वर प्रेरित किया है। ऐसी अवस्था में यदि कश्यप को स्त्री अर्थात् ईश्वर की प्रकृति या प्रेरणा से मतलब है तो भागवत में यदि कश्यप से सब हो गये तो उनका कथन असत्य क्यों ?

विपक्षी को कुछ समझ भी है या नहीं हम समझने में असमर्थ हैं। भागवत में पौराणिक गल्प है कि ऋषि कश्यप के १३ स्त्रियां थीं। उसमें १३ स्त्रियों के नाम भी दिये हैं। जो विपक्षी के उद्धरण में भी आये हैं। इनमें हर स्त्री से प्रथक २ किस २ का जन्म हुआ है यह भी लिखा है। तो फिर कश्यप ईश्वर की प्रकृति का अर्थ विपक्षी ने कैसे लगा लिया। क्या विपक्षी प्रकृति के १३ विभाग करके उनके नाम वही सिद्ध कर सकता है जो भागवत में कश्यप की १३ पत्नियों के दिये हैं ? जब नहीं कर सकता है तो फिर वह भागवत के गपोड़े का बिना फीस के झूठा वकील क्यों बन रहा है।

विपक्षी लिखता है ('रेतसः पुरुषः) अर्थात् शुक्र या वीर्य से मनुष्य की उत्पत्ति हुई है '(ईश्वर से नहीं')'। यह तो सभी जानते हैं

कि वीर्य ही मानव उत्पत्ति का आधार होता है, यह कहा किसने है कि विपक्षी गधे के गोबर से उत्पन्न हुआ है। जितने भी प्राणी उत्पन्न होते हैं चाहे मैथुनी क्रम हो या अमैथुनी क्रम हो, होते वीर्य तत्व से ही पैदा हैं। और वीर्य तत्व पञ्च भूतों से ही पैदा है। और वीर्य तत्व पञ्चभूतों से ही बनता है। मैंढक के छोटे २ बच्चे करोड़ों की संख्या में बरसात में पृथ्वी में मौजूद वीर्य तत्व से बिना मैथुनी वीर्य के पैदा होजाते हैं और बड़े हो कर फिर मैथुनी क्रम से नर व मादा के रजवीर्य के संयोग से उत्पन्न होते रहते हैं। क्या विपक्षी बाहर की आंखें नहीं रखता है जो वह सृष्टि के इस प्रत्यक्ष क्रम को देख कर प्रारम्भ सृष्टि के नियम को भी समझ सके। जीवों के स्वभावों में भिन्नता माता पिता के संस्कारों से, सुहबत से तथा पूर्व जन्म के कर्मों के कारण होती है। ईश्वर तो कर्मानुसार संस्कारानुसार जीवों का सुधार कहां किस योनि में हो सकेगा वहां जन्म देता है। स्वभाव तदनुसार बनते हैं। ईश्वर पर कोई दोष नहीं आता है विपक्षी लिखता है कि सृष्टि को स्वरूप से अनादि क्यों नहीं मान लेते हो जो प्रवाह से अनादि मानते हो। विपक्षी भूलता है कि सृष्टि=उत्पन्न होने वाली, परमाणुओं के संयोग से समय विशेष में बनी हुई पृथ्वी अनादि नहीं हो सकती है। संयोग और वियोग से रहित पदार्थ ही अनादि होगा।

विपक्षी पूछता है कि जीवात्मा का व परमात्मा बाप या बनाने वाला कौन है? हमारा उत्तर है कि जीवात्मा तथा परमात्मा प्राकृतिक तथा परमाणुओं के संयोग वियोग जन्य कार्य=बने हुए नहीं हैं जब विपक्षी इनको बना हुआ सिद्ध कर देगा तो हम उसका उत्तर देंगे विपक्षी को जानना चाहिये कि आदि कारण का कारण नहीं हुआ करता है कार्य का कारण होता है इसलिये

वैदिक धर्म का सिद्धान्त है कि आत्मा-परमात्मा व (जगत का आदि कारण) प्रकृति अनादि है। परमात्मा जीवों के पूर्व सृष्टि के कर्मों का भोग कराने के लिए प्रकृति से जगत की रचना एवं विश्व की व्यवस्था करता है। प्रत्येक प्रलय के बाद सृष्टि रचना और प्रत्येक सृष्टि के बाद प्रलय, यह अनादि क्रम चला आता है और अनन्त काल तक चला जावेगा अर्थात् सदा से है और सदैव रहेगा। पंचभूतों के योग से निर्मित परमाणुओं से बनी हुई इस पृथ्वी में भारतीय विज्ञान एवं ज्योतिष शास्त्र के आधार पर चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक स्थिर रहने की सामर्थ है। तत्पश्चात स्वभावतः महाप्रलय हो जावेगी जब पृथ्वी ही न रहेगी तो उस पर आधारित प्रत्येक वस्तु प्रत्येक प्राणी भी न रहेगा न विपक्षी रहेगा न विपक्षी की कमाऊ चेला मण्डली उतने समय तक प्रलय देखने को जीवित रहेगी। मनुष्य की औसत आयु को देखते हुए विपक्षी अधिक से अधिक ३० या ४० साल तक और जीवित रहेगा। उस का ईश्वरपना मौत के समय खत्म हो जावेगा। किन्तु विश्व का सृजनहार परमेश्वर सदा से है और सदा रहेगा। मरने के बाद विपक्षी के ईश्वरत्व का दम भरने वाले आत्मा को परमेश्वर छल व दम्भ पूर्ण कार्य करने के अपराध में विपक्षी की प्रिययोनि गधे में भेज देगा जहां विपक्षी है चूहे चू करता हुआ अपनी ईश्वरता का रोना रोया करेगा।

इस अध्याय के अन्त में विपक्षी लिखता है—'हम डण्के की चोट से और दाहिना हाथ उठाकर और इस कागज पर लिखकर देते हैं कि यदि कोई वेदों से ईश्वर को सिद्ध कर देगा तो हम मुनि समाज का प्रचार बन्द कर देंगे।' इससे ऊपर के वाक्य में लिखा है 'कोई है ऐसा आर्य समाजी जो चारों वेदों में से एक भी ऐसा मन्त्र हमें दिखादे जिसमें ईश्वर का वर्णन हो या जिसमें ईश्वर सिद्ध होता हो।'—इस

घोषणा से विपक्षी वेपढ़े लिखों को यह दिखाना चाहता है कि वह वेदों का पन्डित है। यदि विपक्षी ने यह घोषणा की होती कि वेदों के एक भी मन्त्र से ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध कर देने वाले को अधिकार होगा कि वह विपक्षी की नाक कान चाकू से काट ले। तब तो कुछ मतलब भी सिद्ध हो सकता था। हम ईश्वर सिद्धि में वेद मन्त्र प्रस्तुत करते हैं विपक्षी यदि सच्चा आदमी है तो वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके दिखावे। वेदों में ईश्वर विषयक सैकड़ों मंत्र दिए हैं, विपक्षी ने कभी फूटी आँख से भी वेदों को नहीं देखा है, वह व्यर्थ ढोंग रचता रहता है।

योनः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तंसम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥

ऋ०१०।८२।३

(यः नः पिता) जो परमेश्वर हमारा पालक है (जनिता) उत्पादक है (यो विधाता) जो जगत को धारण करने वाला है (विश्वा धामानि भुवनानि वेद) सब स्थानों, लोकों और उत्पन्न पदार्थों को जानता है। (यः देवानां नामधा एकः एव) जो सब देवों के नाम को धारण करने वाला एक ही देव है (तम) उस (संप्रश्नं) अच्छी प्रकार से जानने योग्य परमेश्वर की ओर (अन्या भुवना यन्ति) अन्य सब लोक और प्राणी गति कर रहे हैं।

न यस्य द्यावा पृथ्वी अनुव्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्

ऋ १।५२।१४

(अस्य) जिस परमेश्वर के (द्यावा पृथिवी) आकाश और पृथ्वी (सिन्धवः) समुद्र और (रजसः) अन्य लोकलोकान्तर

(अन्तमन्न आनशुः) अन्त नहीं पा सकते हैं (अनुव्यचः) वह सब में ओत प्रोत है। (नोत स्त्रवृष्टिं मदे अस्य युध्यत) मेघ बिजली आदि भी वृष्टि करते हुए उसकी महिमा सूचित करते हैं पर उसका अन्त नहीं पा सकते हैं। ऐसा वह परमेश्वर (एकः) एक ही है, उसने (आनुषक) सबमें व्याप्त होकर (अन्यत्) अपने से भिन्न इस (विश्वम्) विश्व को (चकृषे) वनाया है।

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णु रुरुगायो नमस्यः।

त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या ॥ऋ०२।१।३

हे परमेश्वर ! तुम ही इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, ब्रह्मणस्पति आदि नामों को धारण करते हो।

तदेवाग्निस्तादित्यस्तदु वायुस्तद् चन्द्रमाः।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ (यजुर्वेद ३२-१)

वही परमात्मा अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः तथा प्रजापति नामों से पुकारा जाता है।

सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः॥ अथर्व १३।४।४।

सोऽग्निः स उसूर्यः स उ महायमः॥ अथर्व १३।४।५।

वही परमात्मा अर्यमा, वही वरुण, वही रुद्र वही महादेव है। वही परमेश्वर अग्नि, वही सूर्य और वही महा यम है।

यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥

ऋ० १०।१२१।७

जो परमेश्वर सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि सब देवों, प्रकाशमान पदार्थों और विद्वानों का एक ही अधिष्ठाता देव है उसीको हम श्रद्धा भक्ति के साथ स्मरण करते हैं।

ओ३म् खं ब्रह्म। यजु ४०

(खंम) आकाश के समान व्यापक महान (ब्रह्म) ब्रह्म परमे-

श्वर का मुख्य नाम (ओ३म्) ओ३म् ।

ओ३म् क्रतास्मरः । यजु ४०

हे (क्रतो) कर्मशील मनुष्य । तू ओ३म् नाम से परमेश्वर का स्मरण किया कर ।

इत्यादि सहस्त्रों वेद मंत्रों में चारों वेदों में 'ब्रह्म' व अन्य नामों से परमेश्वर का वर्णन है और उसी की उपासना का विधान है । वेद मंत्रों में बताया गया है कि वह अनेक नामों वाला परमेश्वर सारे विश्व का रचियता-एवं धारण करने वाला है । अतः वेदों से परमेश्वर का अस्तित्व सिद्ध है । विपक्षी अब अपना नाक कान हमारे पास आकर या गोरखपुर की आर्य समाज में जाकर कटवा लेवे अथवा अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपनी शुद्धि करा कर आर्य ससाज की शरण में आजावे । वरना लोग उसे झूठा व फ़रेबी कहने लगेंगे ।



अध्याय ४

चौथे अध्याय के सम्पूर्ण १३ पृष्ठों में विपक्षी ने कोई नया आक्षेप पेश नहीं किया है। तीसरे अध्याय का ही सारा मैटर दुबारा लिख मारा है हमारी दृष्टि में विपक्षी को लेख या पुस्तक लिखना भी नहीं आता है। वह एक ही बात को, एक ही वाक्य को बीसियों बार लिखता है, निरर्थक रूप से भाषा बढ़ाता है, आक्षेप में उसके न तो पांडित्य दीखता है और न उसमें लिखने की सभ्यता ही दीखती है। वह आर्य समाज के थपेड़े खा खाकर जल भुन गया है और अब सभ्यता को ताक पर रख कर रांड़ निपूती बकने पर उतर आया है। उसके आक्षेपों में कोई मौलिकता नहीं है। वह न किसी मत को मानता है न ईश्वर को, न वेद को मानता है न किसी शास्त्र को। वह खुद ईश्वर बनने की धुन में पागल हो रहा है और उसी उन्माद की अवस्था में आर्य समाज के विरुद्ध प्रलाप करने बैठा है। उसे शास्त्र विषय में छोटी से छोटी बात भी समझने की बुद्धि नहीं है। हम विपक्षी को अज्ञानी इसलिए कहते हैं कि वह एक ही बात को बार २ पूछता चला जाता है। गत तीसरे अध्याय में विपक्षी ने ईश्वर आत्मा व परमाणुओं को उत्पन्न करने वाले का प्रश्न रखा था अब पुनः वह उसी बात को यहां भी उठा रहा है—

"यदि ईश्वर बिना कारण के है, बिना बाप के है, बिना बनाने वाले के है, यदि असंख्य और अनन्त प्रकृति परमाणु बिना

बाप के हैं और बिना बनाये हैं, और बिना कारण के हैं, और इसी तरह से यदि असंख्य और अनन्त जीव बिना कारण के हैं, बिना बनाए हैं, और बि॰ ा बाप के हैं, तो तुम्हारा यह कथन कि बिना बनाए कुछ नहीं बनता, बिना कारण के कुछ नहीं है बिना पिता के बिना जनक के कोई नहीं है, सर्वथा, व्यर्थ, अनर्गल, असत्य और पागलों का प्रलाप है।" 'यदि यह (जीव, ईश्वर व परमाणु) बिना पिता के, बिना कारण के हैं तो तुम्हीं बतलाओ कि यह सूर्य चांद पृथ्वी और तमाम तारे बिना बनाये बिना बाप के और बिना कारण के क्यों नहीं हैं।" यदि तुम्हारी कल्पना से ईश्वर जीव व परमाणु अनादि हो सकते हैं तो यह सूर्य चन्द्र व तारे अनादि क्यों नहीं हैं?

इसका उत्तर तीसरे अध्याय में हम दे चुके हैं। जो वस्तु बनी हुई होती है उसे कार्य कहते हैं कार्य का लक्षण होता है। जिसमें संयोग और वियोग पाया जाय। सूर्य चन्द्र पृथ्वी आदि सभी परमाणुओं के संयोग से बने हुए होने से कार्य सिद्ध हैं। तब कार्य बिना कर्ता के नहीं होता है, इस सिद्धान्त के आधार पर ये सभी अनादि अनन्त नहीं हो सकते हैं। इनका कर्ता ईश्वर सिद्ध है। परमाणु-आत्मा तथा परमात्मा में संयोग वियोग सिद्ध न होने से वे अनादि अनन्त सिद्ध हैं अतः उनका बाप या कर्त्ता नहीं हो सकता है। कार्य का कारण होता है, आदि कारण का कारण नहीं होता है। यदि विपक्षी थोड़ा सा भी पढ़ा लिखा व्यक्ति होता तो तर्क शास्त्र की इस छोटी सी बात को समझता होता। खेद है कि विपक्षी स्वयं पागलों के से प्रश्न करता है। आशा है विपक्षी अब समझ गया होगा जब तक वह किसी भी तर्क या प्रमाण से आत्मा-परमाणु व परमात्मा के पैदा हुआ सिद्ध नहीं कर देता है तब तक उसे उनके जनक का प्रश्न उठाने का अधिकार नहीं है। जो जनित

है उसका जनक होता है, जिसका जन्म ही सिद्ध नहीं है उसके जनक का प्रश्न करना मूर्खता मानी जाती है।

आगे चलकर विपक्षी एक नया तर्क उपस्थित करता है। वह लिखता है कि—"जब ईश्वर निराकार है तो वह किसी का उत्पादन व निमित्त कारण भी नहीं होसकता है।.... इतने बड़े साकार संसार का निमित्त कारण भी साकार और शरीरधारी ही होंगे, अशरीरी नहीं। निमित्त कारण को हिल कर किसी को बनाना होता है, बिना हिले नहीं। निमित्त कारण या कर्ता में क्रिया अवश्य होनी चाहिये। कोई क्रिया या चेष्टा उसमें होगी जो एकदेशी होगा। सर्वदेशी और सर्व व्यापक में क्रिया नहीं हो सकती....एक रस अखण्ड रूप से जो सर्व व्यापक है वह हिलेगा कैसे ? जो हिलेगा नहीं उसमें किसी तरह की गति चेष्टा या क्रिया नहीं होगी और जिसमें क्रिया नहीं हो सकती वह किसी का कर्ता बनाने वाला या निमित्त कारण नहीं हो सकता।"

यह विपक्षी का कमजोर प्रश्न है। यह तो हम भी मानते हैं कि निराकार ईश्वर जगत का उपादान कारण नहीं है, सत्यार्थ प्रकाश में भी ईश्वर को जगत का उपादान कारण नहीं माना है। तब यह प्रश्न उठाना निरर्थक रहा। दूसरा प्रश्न भी इसका ठीक नहीं है। विपक्षी की भौतिक देह में उसका निराकार जीवात्मा ठसाठस भरा हुआ है और शरीर में प्रत्येक अवयव में पूर्णतया व्याप्त होने से स्वयं गति न करता हुआ प्रत्येक अवयव को गतिमान रखता है, प्रत्येक अङ्ग से यथावत कार्य लेता है। ठीक इसी प्रकार सारे विश्व में एक रस व्याप्त परमात्मा प्रत्येक पंचभौतिक पदार्थ को, प्रत्येक परमाणु को गति देता है, उसके अन्दर एवं उसके द्वारा क्रिया कराता है, अनन्त विश्व की

रचना करता है, उसका पालन करता है एवं समय आने पर उसका विनाश करता है। जो सूक्ष्म निराकार शक्ति स्थूल पदार्थ के अन्तर में व्याप्त नहीं होगी वह उसके अन्दर क्रिया नहीं कर सकेगी। संसार के सारे कार्य निराकार शक्ति के द्वारा ही होते हैं। निराकार शक्ति चाहे वह परमात्मा हो, जीवात्मा हो अथवा विद्युत आदि के रूप में उत्पन्न भौतिक शक्ति हो, वही भौतिक स्थूल पदार्थों में व्याप्त होकर उनसे कार्य कराती है, बड़े से बड़े कल कारखाने निराकार अदृश्य शक्ति के आधार पर चल रहे हैं, विपक्षी का निराकार जीवात्मा उसके भौतिक स्थूल शरीर में व्याप्त होकर उसे संसार के व्यापार में (जीवित रखकर) कार्य करा रहा है। यह एकदेशीय निराकार शक्तियों के कार्य विपक्षी भी स्वयं देख रहा है। इसी प्रकार अनन्त विश्व में परमप्रभु परमात्मा अपने निराकार स्वरूप में व्यापक होने से विश्व के कण २ में गति प्रदान कर कर रहा है, प्रत्येक स्थूल पदार्थ की रचना कर रहा है। प्रकृति से विश्व के पदार्थों की रचना कर रहा है। ठसाठस व्यापक शक्ति ही उस पदार्थ के प्रत्येक अवयव से कार्य ले सकती है जिसमें वह व्याप्त हो। व्यापक शक्ति या जीवात्मा के लिए स्वयं गति करने के लिए स्थान की आवश्यकता नहीं होती है। वह जिस वस्तु में जितने स्थान में व्याप्त होती है उसमें उतने स्थान के अन्दर व्यापक रूप से अपनी शक्ति से कार्य करती है और पदार्थ के अवयवों से कार्य लेती है। इसी प्रकार परमात्मा जो विश्व में ठसाठस एक रस व्याप्त है इसके लिए गति करने की आवश्यकता नहीं होती है बल्कि वह अपनी शक्ति से अनन्त विश्व को गति प्रदान करता है जिसमें कि वह सर्व व्यापक होने से व्याप्त है। विश्व के कण २ में प्रति क्षण ज्ञान

पूर्वक होने वाली क्रियायें, क्रिया करने वाले परमेश्वर क सर्व-व्यापक होने का प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करती है। प्रत्येक व्यक्ति जिसके भौतिक नेत्र हैं तथा जिसके ज्ञान चक्षु खुले हुए हैं परमेश्वर के सर्व व्यापक अस्तित्व को देख व समझ सकता है पर जिसके बाहर व भीतर के दोनों ही नेत्र फूट गये हैं जो निपट अन्धा ही हो, वह कार्य जगत को देखकर कर्ता परमेश्वर को कैसे समझ सकता है। यदि कोई ऐसा बुद्धिहीन व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करके अपने को ही ईश्वर मानने लगे तो वह वस्तुतः दया का पात्र होगा। हमारा विपक्षी भी उसी प्रकार दया का पात्र है।

आगे विपक्षी लिखता है सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है:—

प्रश्न—कभी सृष्टि का आरम्भ है वा नहीं ?

स्वामी जी उत्तर देते हैं—नहीं जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है।

इस पर विपक्षी बकवास करता है—"जब स्वामी जी का आर्य समाज के मत से इस सृष्टि का आरम्भ ही नहीं है तो यह आर्य संवत्सर की संख्या या सृष्टि की उत्पत्ति कहां से मान ली।"

यहां पर विपक्षी ने जान बूझकर शरारत की है। वह सत्यार्थ प्रकाश में पढ़ चुका है कि ऋषि दयानन्द जी महाराज ने यह लिखा है कि प्रलय के बाद सृष्टी बनती है, सृष्टि का अन्त होने पर प्रलय होती है, फिर प्रलय के बाद सृष्टि बनती है। इसी प्रकार सृष्टि बनने व प्रलय होने का प्रवाह अनादि काल से ऐसे ही चला आता है जैसे रात के बाद दिन व दिन के बाद फिर रात होने का क्रम हम रोजाना देखते हैं । अथवा

प्रलय होने के क्रम का प्रारम्भ नहीं है। इसे ही अनादि क्रम कहते हैं ऋषिने यह नहीं लिखा कि इस वर्तमान सृष्टि का प्रारंभ नहीं है। सृष्टि शब्द का अर्थ ही बनी हुई का है जो बनी हुई है, उसका बनाना जब भी हुआ था तभी से उसके प्रारम्भ की आयु का गणित ज्योतिष एवं विज्ञान के आधार पर किया जाता है। हमारी वर्तमान सृष्टि की आयु कुल ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष है। उसमें से अब तक १९७२९४९०६१ साल बीत चुके हैं व बाकी अभी भोगने को शेष हैं। विपक्षी को तो कुछ आता जाता नहीं है, उसे तो खुदा बनने का जनून सवार है. वरना वह भारतीय विज्ञान का यदि अध्ययन करता तो सभी कुछ समझ सकता था।

———

अध्याय ५

अपनी पुस्तक के पांचवे अध्याय में विपक्षी ने एक आक्षेप सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास के उस स्थल पर किया है जिसमें ऋषि ने आदि सृष्टि की रचना का प्रकार वर्णन किया है। यह एक गम्भीर विषय है और उसे न समझ कर विपक्षी ने अपनी कम अक्ली का दिग्दर्शन कराया है। हम उस स्थल को सत्यार्थ प्रकाश से उद्धृत करके उसका स्पष्टी करण करते हैं ताकि विपक्षी की अज्ञानता का निवारण हो सके।

ऋषि ने लिखा है "जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा उन परम सूक्ष्म पदार्थों को इकटठा करता है उसकी प्रथम अवस्था में जो परमसूक्ष्म प्रकृति रूप कारण से कुछ स्थूल होता है उसका नाम महतत्व और जो उससे कुछ स्थूल होता है उसका नाम अहंकार और अहंकार से भिन्न २ पाँच सूक्ष्म भूत श्रोत, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण, पांच ज्ञान, इन्द्रियां वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ, और गुदा ये पांच कर्मेन्द्रियां हैं, और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है और उन पंचतन्मात्राओं से अनेक स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पांच स्थूल भूत जिनको हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं उनसे नाना प्रकार की औषधियां वृक्ष आदि अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है। परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर परमात्मा बनाकर उनमें जीवों का संयोग कर देता है तदन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है।"

ऋषि के उक्त लेख में मानव की अमैथुनी सृष्टि की रचना का प्रकार वर्णन किया गया है। परमात्मा मानव के शरीर के निर्माण के लिए भूमि के गर्भ में 'परमसूक्ष्म पदार्थों' को इकट्ठा करता है। इन एकत्रित हुए (मानव शरीर के उपादान कारण रूप तत्व पदार्थों को) प्रथम अवस्था में जो परम सूक्ष्म प्रकृति रूप कारण से कुछ स्थूल होता है महतत्व कहते हैं। महतत्व से भी जब उन पदार्थों की स्थूल अवस्था आती है तो उस की संज्ञा अहंकार होती है या उसे अहंकार कहते हैं। महतत्व और अहंकार परम सूक्ष्म प्रकृति की क्रमशः स्थूलावस्था को प्राप्त अवस्थाओं के नाम हैं। उसके बाद प्रकृति की उस अहंकारावस्था से भिन्न २ पांच सूक्ष्मभूत और शरीर के अवयव (शरीर की पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां अर्थात् श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण तथा वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा और मन उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार से प्रारम्भ सृष्टि में मानव शरीरों की रचना का क्रमिक प्रकार ऋषि ने बताया है। दूसरी ओर उन पंचतन्मात्राओं से अनेक स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पांच स्थूलभूत जिनको हम प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं। उनसे नाना प्रकार की सृष्टि में औषधियां, वृक्ष आदि, उनसे अन्न पैदा होता है। फिर जब लोग बड़े होकर उन औषधियों एवं अन्न को खाते हैं तो उनसे उनके शरीरों में वीर्य की उत्पत्ति होती है और उस वीर्य से मानव शरीरों का मैथुनी सृष्टि में रचना क्रम चालू होता है। ऋषि कहते हैं परन्तु आदि सृष्टि मैथुनी नहीं होती है क्योंकि आरम्भ में परमेश्वर प्रथम मानव शरीरों स्त्री पुरुषों के शरीरों को) बना कर उनमें जीवों का संयोग कर देता है तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है।

ऋषि के लेख की इस महत्वपूर्ण बात को न समझकर विपक्षी ने महतत्व को बुद्धि और अहंकार को जीवात्मा के अपने को प्रगट करने का एक प्रकार लिख मारा है। और उस पर व्यर्थ की बकवास करके अपनी पुस्तक के ४ सफे काले किये हैं। नास्तिक लोग ऋषियों की बातों को समझने की बुद्धि नहीं रखते हैं। यदि इतनी ही अक्ल उनमें होवे तो वे नास्तिक क्यों रह सकें।

अध्याय ६

अपनी पुस्तक के छठे अध्याय में विपक्षी आर्य समाज-ऋषि दयानन्द तथा उनके किसी ग्रन्थ पर कोई आक्षेप नहीं करता है बल्कि ईश्वर के सृष्टि बनाने, प्रलय करने एवम् जीवों की दुख सुख की अवस्थाओं को लेकर ईश्वर पर आक्षेप करता है, ईश्वर को निर्दयी बताता है, ईश्वर के जगत् कर्तृत्व पर आक्षेप करता है।

हमने गत अध्यायों में यह बताया था कि प्रलय स्वाभाविक है। हम देखते हैं कि एक मकान बनाकर खड़ा किया जाता है, वह बहुत वर्षों तक खड़ा रहता है। कालान्तर में उसमें जीर्णता आती है उसकी छत व दीवारें खराब होने लगती हैं। उनमें से मिट्टी गल कर गिरने लगती है और एक समय आता है जब वह नष्ट होकर धराशायी हो जाता है और अधिक समय बीतने पर वहां केवल मिट्टी का ढेर बन जाता है। संसार की प्रत्येक बनी हुई वस्तु में हम उत्पत्ति के बाद क्षय की अवस्था देखते हैं। हमारा विपक्षी भी बालक था, युवा हुआ और वृद्धावस्था की ओर, क्षय की ओर बढ़ रहा है। यदि वह जल्द नहीं मर गया तो उसका शरीर जीर्ण तो हो जावेगा। उसकी इन्द्रियों की शक्ति नष्ट होती जावेगी, अन्त में कपिलावस्था को प्राप्त होगा और फिर शरीर का नाश अवश्यंभावी होगा,

इसीलिए यह नियम बताया जाता है कि जिसका आदि होता है उसका अन्त अवश्य होता है। जिसका एक किनारा होता है उसका दूसरा किनारा अवश्य होगा। उसी प्रकार जिन परमाणुओं के संयोग से इस पृथ्वी की रचना हुई है उसमें जितने समय तक इस रूप में संयुक्त रहने की सामर्थ्य होगी उतने समय पृथ्वी स्थित रहेगी। उसके पश्चात् धीरे २ उसकी शक्ति का ह्रास होने लगेगा। जिस स्थान की पृथ्वी में उर्बर शक्ति का नाश हो जाता है वहां कुछ भी पैदा नहीं होता है। उसी प्रकार जब पृथ्वी के परमाणुओं की संयुक्त रहने की शक्ति का क्षय होने लगेगा तो पृथ्वी की उर्बर (उपज की शक्ति) नष्ट होने लगेगी, और ऐसी दशा पैदा हो जावेगी जब इस पर प्राणी जगत का जीवन असम्भव हो जावेगा। कालान्तर में बानस्पति जगत का भी विनाश हो जावेगा और तब पृथ्वी निर्वीर्य होकर नष्ट हो जावेगी। उस समय परमेश्वर पृथ्वी के परमाणुओं को छिन्न भिन्न कर देगा और वह पृथ्वी की पूर्ण प्रलयावस्था होगी। प्रलयावस्था ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष तक स्थिति रहेगी। पृथ्वी के नष्ट न होने से पूर्ण प्राणी जगत का विनाश हो जाता है। अतः जीवों के कर्म फल का भोग शेष रह जाता है। यदि विपक्षी किसी कुए में गिर कर आत्म हत्या करले तो उसके अब तक आर्य समाजियों को गाली देने, स्वयं खुदा बनने, दुनियां को धोखा देकर पैसा एंठने आदि दुष्कर्मों की सजा भुगतने का कार्य शेष रह जावेगा और उसके लिए ईश्वर उसे पुनः किसी न किसी योनि में जन्म देगा इसी प्रकार प्रलय स्थिति के कारण जितने जीवों को शुभाशुभकर्मों के फल भोगने को शेष रह जाते हैं तो

उनके फल भोग कराने के लिए ईश्वर पुनः सृष्टि की रचना करता है और जीवों की अमैथुनी सृष्टि द्वारा रचना करके फिर मैथुनी क्रम चलता है। दिन भर काम करने के बाद जब मनुष्य थक जाता है तो रात्रि को आराम करने पर उसकी थकावट दूर हो जाती है और प्रातः वह पुनः ताजा दम होकर अपने कार्य में प्रवृत होता है।। पृथ्वी के परमाणु जब बहुत दिनों तक संयुक्त रहने से हीन वीर्य हो जाते हैं और प्रलय अवस्था में व पुनः प्रकृति रूप में उतने ही समय तक अवस्थित रहते हैं जितने समय तक वे कार्य रूप में (पृथ्वी के रूप में) संयुक्त रहे थे तो उनमें पुनः सृष्टि रचना के रूप में आने की सामर्थ्य आ जाती है और फिर उनसे 'यथापूर्वकल्पयत्' पूर्व कल्प के समान पृथ्वी की रचना होती है। सृष्टि रचना व प्रलय का यह स्वाभाविक क्रम सदा से है और सदा चलता रहता है।

ईश्वर की व्यवस्था में प्रत्येक प्राणी को दुःख व सुख उसके कर्मों की अपेक्षा से मिलता है। विपक्षी के कर्म पूर्व जन्म के इतने खराब थे कि उनके कुसंस्कारों के कारण वह ईश्वर को भी समझने में असमर्थ है, आज भी ४२० का धन्धा करता है, लोगों को अपने को खुदा बताकर धोखा देता है, अज्ञान का प्रसार करता है, दूसरों को गालियाँ बकता है, लेख लिखने का भी ढङ्ग नहीं आता है फिर भी किताबें लिखने की धृष्टता करता है, एक ही बात को बीसियों बार लिखता व कहता है, महापुरुषों की ऊटपटांग ढङ्ग से आलोचना करता है, विद्या की उसमें भारी कमी है किन्तु दुनियां को धोखा देने को योगीश्वर, मुनीश्वर बनता है। विपक्षी में जैसे वर्तमान दुर्गुणों के समावेश में उसके पूर्व जन्म के संस्कार कारण हैं जो उसे दुःखी सुखी

बनाते रहते हैं ऐसे ही प्रत्येक जीव के कृत कर्मों के संस्कार उसे दुःखी व सुखी बनाते हैं। आधिदैविक, आधिभौतिक एवं अध्यात्मिक सुख दुःख प्राणियों को इनके कर्मों के अनुसार ईश्वरीय व्यवस्था में मिला करते हैं। किसी को सर्प काटता है, किसी पर बिजली गिरती है, कोई नदी में डूबता है, किसी का हार्ट फेल होता है, कोई रोगों में पड़ा घुल २ कर मरता है, किसी की सुखद मृत्यु होती है किसी की दुःखद मृत्यु होती है, कोई लड़ाई के मैदान में गोली खाकर प्राण छोड़ता है यह सब कर्मानुसार व्यवस्थायें हैं। ऐसे ही कोई काना, कोई अन्धा, कोई निर्धन, कोई सम्पन्न, कोई जन्म रोगी, कोई आजन्म सुखी, कोई राजा, कोई कङ्गाल, कोई सज्जन, कोई दुर्जन होता है व ऐसे घरों में जन्म लेता है। यह सब पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार होता है। पशु पक्षी कीड़े-मकोड़े आदि योनियों में, जीवों का जन्म लेना भी कर्मानुसार व्यवस्थायें हैं। इनके लिए कर्म करने वाले जीव ही उत्तरदायी हैं, न्यायाधीश परमेश्वर नहीं है। पुनर्जन्म के बालकों से जिनको पूर्व जन्म की बातें याद होती हैं मिलने से एवं उनके पूर्व जन्म के कर्मों का हाल मालूम करने से पुनर्जन्म के कारण स्पष्ट पता चल जाते हैं। विपक्षी भी यदि इस कर्म विज्ञान को जानना चाहे तो वह पहिले आस्तिक बुद्धि अपने अन्दर पैदा करे और तत्सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन करे। विपक्षी तो ईश्वर बनने का दावेदार है। आश्चर्य है कि वह कर्म विज्ञान की उस मोटी सी बात को भी नहीं समझ सकता है।

विपक्षी मानता है कि हर जगह एक क्रम है। हम पूछते हैं कि आखिर वह क्रम या नियम किस नियन्ता के द्वारा बनाया गया है और किसके नियन्त्रण में वर्तमान है। नियम बिना नियामक के नहीं चलते

हैं। कानून यदि कहीं पर लागू है तो उसे किसी ने कभी न कभी बनाया होगा और उसे संचालन करने वाली कोई ज्ञानवान् सत्ता अवश्य होगी। फिर चाहे वह सत्ता प्रगट में हो या अदृश्य हो। पर ज्ञानी व्यक्ति नियम व व्यवस्था को देखकर उसके नियामक व्यवस्थापक की सत्ता को अनुभव कर लेते हैं। पानी जम कर पहाड़ पर वर्फ बनता है फिर गल कर वह पानी बनता है, तो विपक्षी के घर के कुएँ में गर्मी में पानी जम कर बर्फ क्यों नहीं बन जाता है। पानी को एक विशेष डिग्री की ठण्डक मिलने पर वह मशीनों में जम कर वर्फ बन जाता है, तो विपक्षी पानी को आग पर गर्म करके बर्फ क्यों नहीं बना लेता है? यह सब किसी नियम के आधार पर होता है और इस नियम का नियन्ता ईश्वर है। गेहूँ व चना बोने से पौधा पैदा हो कर अन्न पैदा होता है। यदि विपक्षी इस नियम को तोड़ना चाहे और गेहूँ व चनों को भाड़ में भून कर बोकर पौधा पैदा करना चाहे तो नहीं कर सकेगा। क्योंकि ईश्वरीय नियम के विपरीत है। विपक्षी मुर्गे व मुर्गी का रज वीर्य लेकर थाली में रख कर अण्डा नहीं बना सकेगा अण्डा मुर्गी के गर्भाशय में ही ईश्वरीथ नियम के आधार पर बनेगा। संसार के प्रत्येक कार्य में नियम कार्य कर रहे हैं, पृथ्वी का घूमना चांद की पृथ्वी की परिक्रमा करना, पृथ्वी का सूर्य की परिक्रमा निराधार आकाश में करना, सूर्य का अपनी ही कक्षा में घूमना, अनन्त तारागणों का विधिवत संचालन, धूम्र केतुओं का आकाश में भ्रमण, एक के बाद ऊपर एक समान दूरी पर असंख्य आकाश गंगाये असंख्य भ्रमण शनि तारा गणों के समूहों से युक्त असीम विश्व में विद्यमान होकर अपने

रचयिता नियन्ता एवं धारण कर्त्ता परमेश्वर की महिमा का दर्शन नेत्र वालों को करा रही है। क्या यह असीम विश्व बिना किसी असीम शक्ति वाले परमेश्वर के स्वयं स्थिति होकर नियमबद्ध रूप से वर्तमान हो सकता है। कदापि नहीं। विश्व का नियम में रहना ही नियन्ता प्रभु का सबसे बड़ा प्रमाण है। भौतिक जगत में पदार्थों में होने वाली क्रियायें जो नियमबद्ध रूप में हो रही हैं परमेश्वर की शक्ति का सबूत है। विपक्षी उनका खण्डन नहीं कर सकता है। इस छटे अध्याय में विपक्षी ने कोई भी सार की बात नहीं लिखी है जिसका उत्तर दिया जावे।

अध्याय ७

अपनी पुस्तक के अध्याय सात में विपक्षी बड़े बल के साथ लिखता है कि सत्यार्थ प्रकाश में प्रथम समुल्लास में ऋषि दयानन्द महाराज ने ईश्वर के १०० नामों की व्याख्या की है। उन में से एक भी नाम निघण्टु में ईश्वर का नहीं दिया है अतः वह नाम ईश्वर के गलत हैं। हमारा कहना है कि विपक्षी यह नहीं जानता है कि निघण्टु और निरुक्त की स्थिति क्या है ? महर्षियास्क के समय में वेद के जो शब्द तथा मंत्र विवादास्पद समझे जाते थे और निरुक्त और निघण्टु में उनकी व्याख्या व विवेचन किया गया है, सारे वेद के मन्त्रों व शब्दों की व्याख्या नहीं दी गई है। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने वेद में ईश्वर के लिये प्रयुक्त एवं वैदिक साहित्य में व्यवहृत एक सौ नामों की दृष्टांत के रूप में परिभाषा करके यह सिद्ध किया है कि ईश्वर के लिए प्रयुक्त इन नामों की वास्तविकता को न समझकर अज्ञानियों ने इन जड़ वस्तु व अपने कल्पित देवताओं की उपासना का वर्णन वेदों में मान लिया है जो कि गलत है विपक्षी में यदि योग्यता या दम थी तो वह इन नामों को गलत सिद्ध करने में अपनी अक्ल लगाता। केवल यह लिख देने से ब्रह्म या ईश्वर शब्द निघन्टु में ईश्वर के लिये नहीं दिया है अतः वह ईश्वर का नाम नहीं है, कोई तर्क नहीं है। ब्रह्म का अर्थ वेद, अन्न, ईश्वर या जल भी होता है तो उससे इन्कार कौन करता है। किसी के लड़के का नाम ब्रह्म देव हो तो क्या उससे यह सिद्ध हो सकता है कि

वह ईश्वर है अथवा ब्रह्म नाम ईश्वर का नहीं हो सकता है क्योंकि ब्रह्म देव शब्द एक पुरुष के नाम के लिए प्रत्युक्त है। ब्रह्म नाम ईश्वर का है यह हम पहिले अध्यायों में सिद्ध कर चुके हैं और वेदों में ईश्वर का विशद वर्णन किया है यह भी हम दिखा चुके हैं।

इसके आगे विपक्षी अपना पाखण्ड फैलाने को पुनः 'अय मात्मा ब्रह्म' पद तथा माण्डक्योपनिषद की दूसरी श्रुति को उपस्थित करता है जिसे वह पहिले भी कई बार लिख चुका है। एकही बात को ६ बार लिखने में विपक्षी को लज्जा भी क्यों नहीं आती है। जब वह वेदों में पुनरुक्ति ढूँढ़ता फिरता है तो उसे अपने लेख में तो पुनरुक्ति से बचने का ध्यान रखना चाहिये था। इसे कहते हैं "दीगरे नसीहत ख़ुदरा फ़ज़ीहत।"

हम दूसरे अध्याय में यह सिद्ध कर चुके हैं कि 'अयमात्मा ब्रह्म' पद में ब्रह्म शब्द परमेश्वर का वाची है, क्योंकि वहां परमेश्वर के 'ओ३म' नाम और उसका वर्णन है। उक्त माण्डक्योपनिषद की आगे की श्रुतियों में ईश्वर की विभूति का वर्णन करते हुए बताया है। उसके चार पादों का वर्णन किया गया है।

जगारितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशति मुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथम पादः ।३। (जागरित स्थानः) जाग्रत अवस्था की भांति यह संपूर्ण जगत जिसका स्थान और शरीर है। (बहिष्प्रज्ञः) जिसका अनन्तज्ञान इस वाह्य जगत में फैला हुआ है (सप्ताङ्गः) सप्त लोक ही जिसके सात अङ्ग हैं (एकनोविंशति मुखः) पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच प्राण और चार अन्तःकरण ये उन्नीस तत्व ही जिसके मुख रूप हैं (स्थूलभुक्) जो इस स्थूल जगत के भोक्ता, उसको अनुभव करने वाले तथा जानने वाले प्राणी हैं उनका पालन करना यह उस परमात्मा का वैश्वानर नाम का प्रथम पाद है।

परमब्रह्म परमात्मा के चार पादों को समझाने के लिए जीवात्मा तथा उसके स्थूल-सूक्ष्म तथा कारण शरीरों का दृष्टांत देते हुए ब्रह्मके तीन पादों की व्याख्या की गई है। जिस प्रकार जाग्रत अवस्था में स्थूल शरीर में व्याप्त जीवात्मा, सर से पैर तक सात अङ्गों से मुक्त होकर स्थूल विषयों के उपभोग के द्वार रूप दस इन्द्रियां, पाँच प्राण एवं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार रूप अन्तःकरण चतुष्ट्य इस प्रकार इन उन्नीस मुखोंसे विषयों का उपभोग करता है और उसका विज्ञान ब्रह्म वाह्य जगत में फैला रहता है उसी प्रकार सप्तलोक रूप सात अङ्गों और समष्टि इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण इस प्रकार उन्नीस मुखों से युक्त उस स्थूल जगत रूप शरीर का आत्मा, प्रेरक और स्वामी होने से इस स्थूल जगत का ज्ञाता और भोक्ता है।

स्वप्न स्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशति मुखः प्रविविक्त भुक्तैजसोद्वितीयः पादः ॥४॥ (स्वप्नस्थानः) स्वप्न की भांति सूक्ष्म जगत ही जिसका स्थान है (अन्तः प्रज्ञः , जिसका ज्ञान सूक्ष्म जगत में व्याप्त है (सप्तांगः) पूर्वोक्त सात अङ्गों वाला (एकोनविंशति मुखः) उन्नीस मुखों वाला (प्रविविक्त भुक्) सूक्ष्म जगत का भोक्ता (तैजस) हिरण्य गर्भ (द्वितीय पादः) उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा का दूसरा पाद है।

जिस प्रकार स्वप्न अवस्था में सूक्ष्म शरीर स्वामी जीवात्मा पूर्व कथित सात अंगों वाला और उन्नीस मुखों वाला होकर सूक्ष्म विषयों का उपभोग करता है और उसी में उसका ज्ञान फैला रहता है उसी प्रकार सूक्ष्म रूप में परिणित हुए सप्त लोक रूप सात अंग एवं पूर्वोक्त उन्नीस तत्व रूप मुखों से युक्त सूक्ष्म जगत रूप शरीर में स्थित उसका आत्मा अर्थात्

परमेश्वर हिरण्य गर्भ है। वह समस्त जड़ चेतनात्मक सूक्ष्म जगत के समस्त तत्वों का नियन्ता ज्ञाता और सबको धारण करता है अतः सबका जानने वाला और भोक्ता कहा जाता है। वह तैजस अर्थात् सूक्ष्म प्रकाशमय हिरण्यगर्भ उस पूर्ण परमात्मा का दूसरा पाद है।

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्त स्थानं एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्द मयो ह्यानन्द भुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥५॥

(यत्र) जिस अवस्था में (सुप्तः) सोया हुआ (मनुष्य) (कञ्चन) किसी भी (कामं न कामयते) भोग की कामना नहीं करता है (कञ्चन) कोई भी (स्वप्नं न पश्यति) स्वप्न नहीं देखता है (सत् सुषुप्तम्) वह सुषुप्ति अवस्था है। (सुषुप्त स्थानः) ऐसी सुषुप्ति अर्थात् जगत् की प्रलय अवस्था अथवा कारण अवस्था ही जिसका शरीर है (एकीभूतः) जो एक रूप हो रहा है (प्रज्ञानघनः एव आनन्द मयः) जो एक मात्र घनीभूत विज्ञान स्वरूप और जो एक मात्र आनन्द स्वरूप (चेतो मुखः) प्रकाश ही जिसका मुख है (आनन्द भुक्) जो एक मात्र आनन्द का ही भोक्ता है वह (प्राज्ञः तृतीयः पादः) प्राज्ञ नाम का ब्रह्म तीसरा पाद है।

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययो हिभूतानाम् ॥ ६ ॥

(एषः सर्वेश्वरः) यह परमेश्वर (ब्रह्म) सबका स्वामी है (एषः सर्वज्ञः) यह ब्रह्म सर्वज्ञ है (एषः अन्तर्यामी) यह ब्रह्म सबका अन्तर्यामी है। (एषः सर्वस्व योनिः) यह ब्रह्म सम्पूर्ण विश्व का कारण है (हि) क्योंकि (भूतानाम् प्रभवाप्ययौ) सम्पूर्ण प्राणि एवं अप्राणि जगत की उत्पत्ति-स्थिति और प्रलय का स्थान यही है।

अतः पूर्व वर्णित वैश्वान, तैजस और प्राज्ञ ये परमेश्वर के तीन पाद उसके ही नाम हैं। इसी प्रकार ब्रह्म के चौथे पाद का भी वर्णन उक्त उपनिषद में आगे किया गया है जो उसमें देखा जा सकता है।

उपनिषद के उक्त विवरण से स्पष्ट है कि उसमें जीवात्मा को न तो ब्रह्म माना है और न उसका वर्णन है। उसमें ब्रह्म नामी परमेश्वर का वर्णन किया गया है। पर विपक्षी ने पूरी श्रुति न देकर उनके खण्ड देकर जनता को धोखा देने को गलत उल्टे सीधे अर्थ निकालने का दुष्प्रयत्न किया हैं जो उसकी नीच मनोवृत्ति का परिचायक है। इसी प्रकार उसने ब्रहदारण्यक उपनिषद की निम्न श्रुति को उपस्थित करके छल किया है।—

सवा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो, मनो मयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्र मयः...... ....क्रोधमयोऽक्रोधमयो धर्ममयोऽधर्ममयः॥ (बृहद्०४।४) विपक्षी छल करके अर्थ करता है। "निश्चय करके यही आत्मा ब्रह्म है, जो प्राणों वाला है, काम वाला है। इतना ही नहीं क्रोधमय हैं, अक्रोधमय हैं, धर्ममय है और अधर्ममय है।"

इस स्थल पर उपनिषद् में ब्रह्म का नहीं वरन् जीवात्मा का ही वर्णन चल रहा है। इसमें विपक्षी ने शरारत करके 'अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो' पद में ब्रह्म और विज्ञानमयो पदों को प्रथक २ कर दिया है जब कि दोनों पद संयुक्त हैं। और सत्यार्थ होता है "यह आत्मा ब्रह्म के विज्ञान से युक्त है अर्थात् ब्रह्म परमेश्वर को अनुभव करने की क्षमता रखताहै, यह आत्मा मनोमय, प्राणों वाला, कान बाला, क्रोध, अक्रोध, धर्म व अधर्मय है। इन गुणावगुणों को धारण करता है। यह सब जीवात्मा का वर्णन है। जब जीवात्मा समाधिस्थ होकर ब्रह्म में तन्मय होता है तो ब्रह्म की अनुभूति आनन्द स्वरूप से करता है। जब जागरित अवस्था में इसमें

तामस का उदय होता है तब यह क्रोध एवम् अधर्म में प्रवृत होता है। जब इसमें सत्व गुण का उदय होता है तब यह अक्रोध एवं धर्म भावना मय होता है! शरीरधारी होने पर यह नाक कान आदि इन्द्रियों से युक्त होता है। इत्यादि प्रकार से जीवात्मा का वर्णन उपनिषद्कार ने किया है। इसको तोड़ मरोड़ कर विपक्षी जीवात्मा को ब्रह्म बताकर उसका वर्णन बताता है। यह उसकी शरारत है।

इसके बाद विपक्षी ने अथर्व वेद के चन्द मन्त्रों के अर्थों का तोड़ मरोड़ कर जीव को ब्रह्म सिद्ध करने का छल किया है। हम नीचे उन मन्त्रों के सत्यार्थ एवं विपक्षी का छल स्पष्ट करते हैं।

या आपो याश्च देवता या विराड ब्रह्मणा सह।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेधि प्रजापतिः॥ (अथर्व ११।८।३०)

(या आपः) जो जल और (याः च देवता) जो अन्य प्राणादि देवता (या विराट्) जो विराट् परमेश्वर की विशेष शक्ति (ब्रह्मणा सह) अन्न के रूप में (शरीरं प्राविशत्) शरीर में प्रविष्ट होता है (शरीरे अधि प्रजापतिः) इस शरीर में प्रजापति परमात्मा विद्यमान है। (नोट—अन्न को ब्रह्म निघन्टु २/७ में माना है और विपक्षी ने भी माना है) विपक्षी ने 'शरीरं ब्रह्म' का अर्थ यह शरीर ही ब्रह्म है किया है। जब शरीर ब्रह्म है तो जीवात्मा क्या उस शरीर रूपी ब्रह्म का बाप होगा। जीवात्मा की संज्ञा फिर क्या होगी? विपक्षी तो 'अयमात्मा ब्रह्म' को बोलकर आत्मा को ब्रह्म मानता है तब अब यहां वह चौकड़ी क्यों भूलता है और नाशवान शरीर को ब्रह्म मानता है। स्पष्ट है कि विपक्षी को वेद मन्त्र का अर्थ करने की तमीज़ नहीं है।

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन्नग्नये ॥ (अथर्व ।१०।८। ३१)

(सूर्य पुरुषस्य चक्षुः विभेजे) सूर्य जो परमात्मा का नेत्र रूप है वह शरीरों में नेत्रों के स्थान में अङ्ग बन गया। (वातः प्राणं विभेजे) और वायु प्राण होकर उसका अङ्ग हो गया। इसी प्रकार समस्त देव गण (पुरुषस्य आत्मनं विभेजिरे) पुरुष क्लेश कर्म विपाका शौ परामृष्टः पुरुषं विशेषो ईश्वरः (योग १।२४) परमेश्वर से व्याप्त शरीर में बांटकर बैठ गए। (अथ) उसके बाद (अस्य) इसके (इतरम् आत्मानम्) शेष देह को (देवाः) देवगण ने (अग्नये) जठराग्नि के आधीन (प्रायच्छन्) सौंप दिया।

तस्माद् वै विद्वान पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते।
सर्वाह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ।। (अथर्व १०।८ ३२)

(तस्मात्) इसी कारण (वै) ही (विद्वान) ज्ञानी पुरुष (पुरुषम्) परमेश्वर को (इदं ब्रह्म इति मन्यते) यह साक्षात् ब्रह्म ही है ऐसा मानते हैं। क्योंकि (सर्वाः हि देवताः) समस्त दिव्य शक्तियां ब्रह्म के व्याप्त होने से (अस्मिन्) इस देह में उसी प्रकार (आसते) अविराजे हैं जैसे (गावः गोष्ठे इव) गायें अपने बाड़े में आ बैठती हैं।

विपक्षी ने ३२ वें मन्त्र में शरीर को ब्रह्म माना है और इस ३२ वें मन्त्र में पुरुष (आत्मा युक्त शरीर को) ब्रह्म बताया है। यह गलत अर्थ (इसीलिए करने पड़े हैं कि वह योग दर्शन के अनुसार पुरुष का अर्थ ईश्वर होता है यह नहीं समझ सका है।

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गेयात्रा विभेजिरे।
तान वै त्रयस्त्रिंश द्वेवाने के ब्रह्म विदो विदुः । अथर्व १०।७।२७।

(यस्य) जिसके शरीर में (त्रयस्त्रिंशत् :देवाः) तैंतीसदेव (गात्रा विभेजिरे) अवयव के समान बँटे हुए हैं। (एके ब्रह्म विदः) कोई ब्रह्मवेत्ता (तान्) उन (त्रयस्त्रिशत् देवान्) तेतीस देवों का ही (विदुः) ज्ञान प्राप्त करते हैं।

यत्र देवा ब्रह्माविदो ब्रह्म ज्येष्ठ मुपासते।

यो वैतान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मावेदिता स्यात् ॥अथर्व।१०।७।२४)

(यत्र) जिसके आश्रय पर (देवा.) समस्त देवगण हैं उस (ज्येष्ठं (ब्रह्म) ज्येष्ठ सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म को (ब्रह्मविदः) ब्रह्मवेत्ता ऋषि (उपासते) उपासना करते हैं। (यः) जो (वै) भी (तान्) उन ब्रह्मवेद्यों का (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष साक्षात् (विद्यात्) लाभ करे (सः वेदिता) वह भी ज्ञानी (ब्रह्मा) वेद वेत्ता ब्रह्म वेत्ता हो जाय।

नोट—वैदिक साहित्य में चारों वेदों के ज्ञाता विद्वान की उपाधि ब्रह्मा होती है।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।

त्वं जीर्णो दन्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥

(अथर्व १०। ८। २७)

वेद जीव का सम्बोधन करके कहता है '(त्वं स्त्री) हे आत्मन् तू स्त्री है, (त्वं प्रमान् असि) तू पुरुष है। (त्वं कुमारः) तू कुमार है (उत वा कुमारी) और तू कुमारी है। (त्वं जीर्णः) तू ही बूढ़ा हो कर (दण्डेन वञ्चसि) दण्ड हाथ में लेकर चलता है (त्वं) तू ही (जातः) शरीरधारी रूप में उत्पन्न होकर (विश्वतो मुखः) नाना प्रकार का (भवसि) हो जाता है।

यहां तक विपक्षी ने जितने भी वेद मन्त्र जो ऊपर दिए हैं, उनको देकर अपनी पुस्तक में जीव को ब्रह्म सिद्ध करने का जो प्रपञ्च रचा था, वह सर्वथा व्यर्थ गया है। ऊपर के एक भी

प्रमाण से जीव का ब्रह्म होना सिद्ध नहीं होता है। हां यह अवश्य सिद्ध होगया है कि विपक्षी को वेद मन्त्रों का अर्थ करना भी नहीं आता है । अब हम विपक्षी के अन्तिम पाखण्ड का पर्दा फाश करते हैं। वेद में ईश्वर के अनेक नामों का वर्णन करते हुए एक मन्त्र आता है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तदायुस्तदायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ (यजु ३२।१)

(तद एव अग्निः) वही परमेश्वर ज्ञान स्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि है (तत्) वह (आदित्यः) प्रलय के समय सब को ग्रहण करने से आदित्य है। (तत्) वह अनन्त बलवान और सबका धर्ता होने से वायु है। (तत्) वह आनन्द स्वरूप और आनन्द कारक होने से 'चन्द्रमा' है। (तत् एव) वही (शुक्रम) शुद्ध भाव से युक्त होने से शुक्र है (तत्) वह (ब्रह्म) महान होने से ब्रह्म है। (ताः) वह (आपः) सर्वत्र व्यापक होने से आपः है। (उ) और (सः) वह (प्रजापतिः) सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है।

इस मन्त्र का देवता (प्रतिपाद्य विषय) परमात्मा है अतः इसके सभी नाम परमात्मा परक हैं और उसी प्रकार का अर्थ किया जावेगा। विपक्षी ने पाखण्ड रचने के लिए तदेवाग्निस्तदादित्यः" का अर्थ किया है जो अग्नि है वही आदित्य है। वह विचारा यह भी नहीं जानता है कि तद् शब्द का अर्थ 'वह' होता है या 'जो' होता है। विपक्षी की सूझ बड़ी विलक्षण है। वह वेद मन्त्र में आये 'चन्द्रमा' शब्द का अर्थ 'मन' करता है, और अपनी तुकबन्दी मिलाने को वेद के—

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । (यजु ३१।१२)

इस प्रमाण को उद्धृत करते हुए लिखता है कि चन्द्रमा मन से उत्पन्न हुआ है अतः चन्द्रमा मन है। यह इसी तर्क के आधार पर कोई यह कहे कि पेशाव पाखाना विपक्षी के शरीर से उत्पन्न होता है अतः विपक्षी साक्षात् पाखाना पेशाब है, तो क्या विपक्षी उसे भी स्वीकार करेगा । इस मन्त्र भाग का अर्थ है —

(चन्द्रमा मनसः जातः) परमेश्वर के ज्ञान स्वरूप सामर्थ से चन्द्रलोक उत्पन्न हुआ है तथा (चक्षोः) ज्योतिः स्वरूप सामर्थ से (सूर्यः अजायत) सूर्य मन्डल उत्पन्न हुआ है ।

अतः सिद्ध हुआ कि वेद के किसी भी मन्त्र या पद से जीवात्मा की संज्ञा अग्नि वायु आदित्य ब्रह्म चन्द्र या सूर्य आदि सिद्ध नहीं की जा सकी है और न की जा सकती है। किसी भी उपनिषद के वाक्य से जीव का ब्रह्म होना विपक्षी सिद्ध नहीं कर सका है सर्वत्र उसने छल कपट से काम लिया है जिसका भन्डा फोड़ हमने पूरी तरह कर दिया है ।

वेद का यह वाक्य–योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ओ३म् खं ब्रह्म (यजु० ४०।१७)

अर्थात्–परमेश्वर कहता है:– (यो) जो (असौ) वह (आदित्ये सूर्य मण्डल में (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा है (सः) वह (असौ) परोक्षरूप (अहम्) मैं (खम्) आकाश के तुल्य व्यापक (ब्रह्म) ब्रह्म हूं। (ओ३म्) मेरा नाम ओम है ।

ऋषि दयानन्द जी महाराज का यह कथन सत्य है कि परमेश्वर का मुख्य नाम ओ३म् है । वह सम्पूर्ण विश्व में व्यापक है, वह अनन्त है, उसे ही ब्रह्म आदि नामों से पुकारा गया है ऋषि दयानन्द की यह भी स्थापना अकाट्य है कि ईश्वर-जीव

और प्रकृति तीन ही अनादि सत्तायें हैं और तीनों का अस्तित्व प्रथक २ है न जीव ईश्वर बन सकता है न वह ईश्वर के समान सर्व व्यापक एवं सर्वाधार बन सकता है। जीव अल्पज्ञ एक देशीय, कर्म करने में स्वतन्त्र एवं फल भोगने में परतन्त्र है। दोनों का कर्म क्षेत्र प्रथक प्रथक है। जीव मकान बनाता है, कपड़े बनाता है, दुख सुख का भोक्ता है। वह पेड़ का पत्ता नहीं बन सकता है, एक बाल तक नहीं बना सकता है, न वह अनन्त ज्ञानवान् बन सकता है, वह आनन्द की खोज में मारा फिरता है। ईश्वर का रचना व कार्य क्षेत्र प्रथक है। वह जीवों को कर्मानुसार सुख दुःख की व्यवस्था करता है। विश्व का धारक रचने वाला एवं विश्व को नियन्त्रण में चलाने वाला है। ब्रह्म आनन्द स्वरूप है। मोक्ष को प्राप्त करके जीवात्मा ब्रह्म को प्राप्त करता है और सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म में विचरता है। दोनों कभी एक नहीं हो सकते हैं। और न कोई इनको एक सिद्ध कर सकता है न विपक्षी अपना माया जाल फैलाकर सिद्ध कर सका है।

———

अध्याय ८

पुस्तक के ८वें अध्याय में विपक्षी वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने पर आक्षेप करता है। इस विषय में ठोस आक्षेप थोड़ा है पर व्यर्थ की बकवास अधिक की गई है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने के विषय में जो गम्भीर तर्क व प्रमाण अपने जगत्प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश व ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उपस्थित किये हैं, विपक्षी उनको छू भी नहीं सका है और न उसमें उन पर क़लम उठाने का साहस है। वह इधर उधर की ऊटपटांग बातें लिखकर अपना पाण्डित्य प्रदर्शित करना चाहता है।—

हमने गत पृष्ठों में तर्क के आधार पर यह सिद्ध किया है कि सृष्टि की रचना हुई है। महाप्रलय की समाप्ति के पश्चात् जब सृष्टि रचना होती है तो उचित परिस्थियों में मानव की अमैथुनी सृष्टि के द्वारा उत्पत्ति होती है। मनुष्य का ज्ञान नैमित्तिक होता है। बिना किसी के द्वारा शिक्षा दिये गये कोई भी मनुष्य कभी भी ज्ञानवान नहीं बन सकता है। आज भी इसके परीक्षण होते हैं। अकबर के राज्यकाल में भी शिशुओं को एकान्त में रखकर परीक्षण किये जा चुके हैं और देखा गया है कि बालक बड़े होने पर भी सर्वथा ज्ञान शून्य ही रहते हैं। लाखों वर्षों से जङ्गलों में रहने वाली कोल भील-मीना आदि

जन जातियां शिक्षित व ज्ञानी विज्ञानी कभी नहीं बन सकी हैं। शिक्षित व ज्ञानवान वही बन सका है जिसे दूसरों के निमित्त से शिक्षा प्राप्त हो सकी है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य ज्ञान बिना दूसरों से प्रथम ज्ञान प्राप्त किये हुए अज्ञानी रहता है। इसीलिए जिस प्रभु ने मानव को इस पृथ्वी पर सर्व प्रथम पैदा किया तो वाणी व सृष्टि के ज्ञान विज्ञान की कुन्जी वेद का ज्ञान भी उसको दिया और उसी के आधार से मनुष्य ने धर्म अधर्म एवं अपने वर्तमान कर्तव्य को पहिचाना था। आरम्भ सृष्टि में सहस्रों की संख्या में स्त्री पुरुष उत्पन्न होते हैं। उनमें अपने पूर्व जन्म के (पूर्व सृष्टि के जिसमें से जीव मुक्त हुए थे और उसके बाद मोक्ष की अवधि पूर्ण करके अमैथुनी सृष्टि में इसमें उत्पन्न हुए हैं) कर्म सर्व श्रेष्ठ थे उन चोटी के ४ ऋषियों के अन्तःकरण में चार वेदों का ज्ञान दिया। जिस प्रकार एक योगसिद्ध महात्मा अपने अन्तःकरण की बात दूसरे के दिलमें बिना वाणीके व्यवहार के केवल मानसिक संकल्प मात्र से डाल देता है और दूसरे के मन की बात जान लेता है, उसी प्रकार सर्व व्यापक परमेश्वर ने चार ऋषियों के हृदयों में चार वेदों का प्रथक २ प्रकाश किया और उन ऋषियों ने उन वेदों का अन्य मानवों को उपदेश देकर धर्म अधर्म की व्यवस्था को चालू किया। यदि प्रारम्भ सृष्टि में ही वेद का ज्ञान न दिया जाता तो मानव पर धर्म अधर्म की ज़िम्मेवारी भी न आती और करोड़ों अरबों वर्ष तक मानव मूर्ख ही बना रहता। अग्नि, वायु, आदित्य एवम् अङ्गिरा ये उपाधियां हैं जो चार वेदों का क्रमशः ज्ञान प्राप्त करने वाले चार ऋषियों को प्राप्त होतीं हैं! इसी आधार पर शतपथ में लिखा है:—

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदाः अजायन्त ।

अग्नेऋग्वेदो वायोर्यजवेदः सूर्यात्सावेदः ॥ (शतपथ ब्राह्मण)

इन तीन तपस्वियों द्वारा तीन वेद प्रगट हुए, अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य (आदित्य) से साम वेद ।

वेद मन्त्रोंमें अथर्व वेद की उत्पत्ति अङ्गिरा ऋषि से लिखी है । यहां 'अजायन्त' पद का भाव उत्पन्न होने का है जो ठीक ही है । संसार में तो वेदों का प्रादुर्भाव इन्हीं ऋषियों के द्वारा हुआ था अतः ये ऋषि वेदों के प्रकाश करने का साधन मात्र थे । किन्तु वेदों की पक्षपात रहित अनन्त ज्ञान विज्ञान युक्त त्रिविध अर्थमय दिव्य रचना को देखकर यह निश्चय हो जाता कि वह जीवों की सामर्थ्य के परे परमेश्वर का ज्ञान है । जो अनन्त ज्ञान विज्ञान युक्त स्वयं है । जैसा परमेश्वर है वैसा ही उसका ज्ञान वेद है । यह ठीक ऐसे ही समझा जा सकता है कि जैसी मूर्खता युक्त पुस्तक 'परमार्थ प्रकाश' है वैसी ही योग्यता का उसका लेखक हमारा विपक्षी है । विपक्षी के ज्ञान व स्वभाव को देखकर पता चल जाता है कि यह पुस्तक उसी की रचना हो सकती है ।

वेदों से ज्ञान प्राप्त करके भारत ऋषि महर्षियों ने विश्व के ज्ञान विज्ञान का प्रकाश किया था भारत के प्राचीन उपलब्ध साहित्य में ऐसी सम्पूर्ण विद्याओं का इस देश में होना सिद्ध है जिन तक अभी पाश्चात्य विज्ञान नहीं पहुँच सका है विपक्षी को जिस परमाणु व हाइड्रोजन बमों का गर्व है वह तो भारतीय प्राचीन आविष्कारों के सामने नगण्य है । जबसे महाभारत के विनाशकारी संग्राम के पश्चात् देश के ज्ञान विज्ञान का विनाश हुआ है तब से उन दिव्य शस्त्रास्त्रों के निर्माण की प्रक्रियायें भी लुप्त हो गई हैं । भारद्वाज संहिता का जो अलभ्य प्राचीन ग्रन्थ

प्राप्त हुआ है उसमें जिस २ प्रकार विमानों के निर्माण की विधियां चन्द्र, मङ्गल एवम् अन्य तारागणों में जाने का प्रकार, वहां जाने में मार्ग में उपस्थित होने वाली बाधाओं का वर्णन एवम् उनके निराकरण के उपाय आदि लिखे हैं उसे देखकर प्राचीन वैदिक विज्ञान के गौरव मय काल पर भारतीय गर्व कर सकते हैं। वेद मन्त्रों का विज्ञान इतना गहरा है कि योगी एवं प्राचीन ऋषि गण समाधिस्थ होकर गम्भीर तपोबल से उसका साक्षात्कार किया करते थे और उस दिव्य ज्ञान को विश्व के कल्याण के लिए योग्य पात्रों को दिया करते थे। वेदों के जिन २ मन्त्रों या सूक्तों के रहस्यार्थों का दीर्घ तपोबल के आधार पर जिन २ ऋषियों ने साक्षात्कार किया था, स्मृत्यर्थ उनके नाम उन २ सूक्तों अथवा मन्त्रों पर लिखे चले आ रहे हैं। यह उन महर्षियों की स्मृति को चिरस्थाई रखने के लिए भारतीय वेदज्ञों की परिपाटी रही है। जिसका सदा पालन किया जाता है और किया जाता रहेगा।

वेदोंमें बीज रूपसे ज्ञान विज्ञान का उपदेश किया गया है। जैसे एम०ए०तक साइन्स पढ़ने के पश्चात विद्यार्थी अपने मस्तिष्क का प्रयोग करके नाना प्रकारके आविष्कार बादको कर लेतेहैं। उसी प्रकार वैदिक ऋषियों ने वेद से विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करके नानाके प्रकार आविष्कार किए थे व उस प्रकार के तपस्वी योगी विज्ञानी ऋषि होकर आगे भी वैसे ही आविष्कार कर सकेंगे। जैसे इतना ज्ञान किसी को पुस्तक से हो जावे कि आटा घी व शक्कर के योग से नाना प्रकार के भोजन के पदार्थ बन सकते हैं। और कोई पुरुषार्थ से बीसियों की मिठाईयां व पकवान बन लेते और विपक्षी उससे पूछे कि जलेबी, हलवा पूड़ी आदि बनाने की विधि कहां लिखी है तो क्या विपक्षी का प्रश्न बुद्धि-

मानी का होगा इसी प्रकार वेदों में बीज रूप से ज्ञानवसा नर्त है, बुद्धिमानों ने उसी के आधार पर ज्ञान विज्ञान का विस्तार किया था। मनुष्यों में प्रारम्भिक ज्ञान वेदों से ही फैला था। रूसी भाषा में संस्कृत आज भी अधिकांश में मौजूद है। वेदों के ज्ञान तत्व संसार की सम्पूर्ण भाषाओं में विद्यमान हैं क्यों कि संसार की सम्पूर्ण भाषायें संस्कृत से निकली हैं और संस्कृत वेदों की भाषा का परिवर्तित स्वरूप है। आज भी विश्व के विद्यालयों में वेद मन्त्रों के रहस्यार्थों को जानने के लिए खोजें हो रही हैं। भारद्वाज संहिता से यह सिद्ध है कि रूस का राकेट उसके विज्ञान के सामने कुछ भी नहीं है।

विपक्षी का दूसरा आक्षेप है कि जंगली लोगों को ईश्वर वेद का ज्ञान क्यों नहीं देता है। हमारा उत्तर है कि वेद के पवित्र ज्ञान, ईश्वरीय आवाज को अन्तःकरण में अनुभव करने के लिए जितनी उच्च व पवित्र आत्मा की आवश्यकता है वह जङ्गली लोगों की नहीं होती है। जब ब्रह्म बनने का दावा रखने वाला होते हुए भी विपक्षी वेद मन्त्रों के मोटे अर्थ भी समझने में असमर्थ है तो उससे भी निम्न श्रेणी के गये बीते जङ्गली लोग वेदों को कैसे धारण कर सकेंगे हमारा अनुमान है कि विपक्षी जङ्गली असभ्य लोगों से कुछ तो अच्छा होगा ही वेदों का ज्ञान ईश्वर से सीधा प्राप्त करना बच्चों का खेल नहीं है। हम दैनिक व्यवहार में देखते हैं कि जब मनुष्य किसी बुरे काम को करने की इच्छा करता है तो अन्तः करण में ईश्वर की ओर से बुरे काम को न करने की प्रेरणा होती है जिनकी आत्मा बहुत परिष्कृत होती है, काम, क्रोध, लोभ, मोह से जितनी रहित होती है एवं वह व्यक्ति ईश्वर विश्वासी, सदाचारी एवं सद्-

विचारी होता है तो वह उस ईश्वरी आवाज को सुगमता से सुन लेता है, परन्तु जो काम क्रोधादि में फंसे हुए दुर्व्यसनी, तथा विपक्षी के समान दम्भी होते हैं, जिन्हों ने अपनी आत्मा को गन्दे विचारों एवं कार्यों से गन्दा बना रखा है ऐसे जंगली प्रकृति के लोग बस ईश्वरीय प्रेरणा को नहीं समझपाते हैं। जब हम प्रत्यक्ष ऐसा देखते हैं तो फिर यह कहना कि ईश्वरीय ज्ञान जंगली लोगों को क्यों नहीं प्राप्त होता है महज़ नादानी का प्रश्न है। ईश्वर का साक्षात्कार जो ईश्वर विश्वासी महान योगी जन समाधिस्थ होकर करते हैं उनको ईश्वरीय ज्ञान भी उनकी योग्यतानुसार प्राप्त होता है और उससे वे विशेष ज्ञान वान बनते हैं।

ईश्वरीय व्यवस्था में जीव कर्म करने में पूर्ण स्वतन्त्रा है। जीव चाहे जैसा अपने को बनावे, उसके अधिकार की बात है। किन्तु कृत कर्मों का परिणाम उसे शुभ या अशुभ जैसा भी होगा भोगना पड़ेगा। यदि विपक्षी संखिया खालेगा तो उसे मरना ही होगा, यदि विपक्षी किसी की हत्या कर देगा, किसी की चोरी करेगा, लोगों को धोखा देकर ठगेगा तो उसे दण्ड ईश्वरीय एवं राज्यनियमानुसार भुगतना ही होगा। यदि वह किसी प्राणी की आंखें फोड़ देगा तो अगले जन्म में उसकी भी दोनों आंखें फोड़ दी जावेगी। यदि विपक्षी ब्राह्मण होने पर तम्बाकू पीता होगा तो पुराण की व्यवस्थानुसार वह मर कर अगले जन्म में 'ब्राह्मणोग्राम शूकरः' के अनुसार अवश्य गांव का शूकर बनेगा। यदि विपक्षी को गधों से ज्यादा प्रेम होगा और वैसे ही आच-रण करना पसंद करेगा तो संस्कारानुसार उसे गधे की योनि में जन्म दे दिया जावेगा। हर दशा में कृत कर्मों के अनुसार शुभाशुभ फल जीवों को भोगने पड़ते हैं। और जीवों को उनके

पाप व पुण्य रूप कर्मों के अनुसार वैसे ही देश जाति व कुल में जन्म मिलता है। पशु आदि योनियों में भटककर जब उनका नम्बर मानव योनि में जन्म लेने का आता है तो उन्हें उनके पूर्वकृत कर्मानुसार जंगली या अच्छी कौमों में जन्म दिया जाता है। जीव कर्म करने में पूर्णतया स्वतंत्र होने से अपने शुभ अशुभ कर्मों के लिये उत्तरदायी होते हैं। हां! जब जिस व्यक्तिका उत्थान उसके कर्मानुसार होना होता है तब उसे या उस जाति को अथवा देश को वैसे व्यक्ति या नेता का सम्पर्क ईश्वरीय व्यवस्थानुसार प्राप्त होता है। ईश्वर के चैतन्यस्वरूप एवं सर्व व्यापक होने से जीवों की स्वतंत्रता में कोई बाधा नहीं होती है। चैतन्य जीव को जब पंच भौतिक शरीर में प्रवृष्टि किया जाता है तभी वह उससे कार्य ले सकता है। यदि जीवात्मा को लोहे की बोतल में बन्द कर दिया जावे तो बोतल के परमाणुओं में कोई भी चेतना उसके बन्द होने से नहीं आ सकेगी हां बिजली के तार के छू जाने से बोतल में स्पर्श की तेजी अवश्य आ जावेगी और छूने वाले को पकड़ लेगी। जीवों को उनके कृत कर्मानुसार जो बुद्धि या ज्ञान मिलता है, ईश्वर उसमें हस्तक्षेप नहीं करता है। यह मनुष्यों के अपने अधिकार की बात है कि अपने ज्ञान को बढ़ाकर विशेष ज्ञानी बन कर विशेष सुख प्राप्त करें या मूर्ख बने रहे और पशुओं के समान अपना जीवन व्यतीत करते हैं अथवा बुद्धि हीनता के कारण अपने उत्पादक परमेश्वर से विमुख, कृतघ्न बन कर विपक्षी के समान अपने को ही ईश्वर या ब्रह्म समझने लगें।

विपक्षी पूछता हैं कि चैतन्य ईश्वर के सर्व व्यापक होने पर जड़ जगत चैतन्य क्यों नहीं बन गया ? हमारा कहना है कि विद्युत के व्यापक होने पर प्रत्येक पदार्थ में चैतन्यता क्यों नहीं आ जाती है ?

प्रत्येक पदार्थ वल्व के समान प्रकाशमान एवं कल कारखानों के समान चालू क्यों नहीं हो जाता है। रेडियों की खबरों को आकाश मण्डल में से रेडियो ही क्यों सुनता है, लोहा या काँच का गिलास क्यों नहीं सुनाता है या आकाश में स्वयं आवाज क्यों नहीं आती है ? चैतन्य का प्रकाश वहीं होता है जहां उसके ग्रहण करने के साधन होते हैं। ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त करने के भी साधन हैं, और भारतीय ऋषि लोग समाधिस्थ होकर अपने अन्तःकरण रूपी रेडियो द्वारा परमेश्वर का ज्ञान करते थे। ईश्वरीय ज्ञान को जानने के साधन न जानने वाले व तदानुकूल प्रयत्न न करने वाले मूढ़ जन साधारण तरीके से ईश्वरीय ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

जो जिसका उपासक होता है जिसके लिए प्रयत्न करता है। उसे साधन ठीक होने पर वह वस्तु प्राप्त हो जाती है। विद्या के लिए प्रयत्न करने वाले विद्वान बन जाते हैं धन के लिए यत्न करने वाले धनवान बन जाते है भौतिक उन्नति के लिए यत्नशील ईसाई आदि भौतिक सुखों को प्राप्त होते हैं, आध्यात्मिक उन्नति के लिए यत्नशील भारतीय ऋषि गण उस विज्ञान के पारंगत विद्वान बनते रहे हैं पर वेदों के ज्ञान से शून्य भौतिक वादी देश व समाज आत्मिक ज्ञान की दृष्टि से घोर अशान्ति में हैं। भौतिक उन्नति की चरमसीमा नाशवान सुख की प्राप्ति है तथा आध्यात्मवादी वैदिक विद्वानों का सुख उनके लोक व परलोक के आनन्द का कारण है। विपक्षी पुनर्जन्म व उसके कारण रूप साधनों को यदि समझने लगे तो वह पृथ्वी की बहुसंख्या वाले ईसाइयों की संख्या एवं भौतिकवादी विदेशों की उन्नति देख कर उनके वेद विरोधी होने की प्रसंशा नहीं करेगा। वेदों एवं वैदिक धर्म में मानव को आध्यात्मिक ज्ञान के साथ भौतिक उन्नति करने का आदेश है। परन्तु यह मर्यादा बांध दी है कि लौकिक सुख के लिये भौतिक उन्नति करो किन्तु उसे जीवन का परम लक्ष्य मत बना लो। साधन को ही साध्य मत समझो

इस जीवन के बाद पुनः अगला जीवन मिलेगा अतः
"यतो अभ्युदय निः श्रेयस सिद्धिः स धर्मः।

इस लोक में उन्नति करते हुए इस प्रकार आगे बढ़ो कि इस लोक की उन्नति तुम्हारी परलोक (मोक्ष) की प्राप्ति में साधक बने—दुर्भाग्य से हमारा देश जो भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति की चरमसीमा को, महाभारत से पूर्व प्राप्त कर चुका था गृह कलह से बरवाद हो गया। प्रायः १००० साल की लम्बी पराधीनता में हमारा देश तवाह कर दिया गया। इस विदेशीय शाशकों ने इस देश के ज्ञान विज्ञान को उसके विशाल साहित्य के भण्डारों को नष्ट कर दिया। और आज देश के शत्रु भारतीय सभ्यता एवं वैदिक संस्कृति के दुश्मन हमारे विपक्षी जैसे मूढ़ मनुष्य विदेशियों की प्रशंसा करके हमारी सभ्यता एवं उसके आधार भूत साहित्य ईश्वरीय ज्ञान वेद की अपनी मूर्खता के कारण मजाक उड़ाते हैं। कितनी लज्जा की बात है।

वेदों में ज्ञान विज्ञान का अत्यन्त सूक्ष्म (वीज) रूप से वर्णन है। अनेक विद्याओं के ज्ञाता एवं वेद विंषयमें विशेष ज्ञानी विद्वान जन वेद के मन्त्रों पर अत्यन्त सूक्ष्म रूप से विचार करके उनमें सन्निविष्ट नाना प्रकार के ज्ञान विज्ञान के रहस्यों का पता लगा लेते हैं और बुद्धि पूर्वक उस ज्ञान के विस्तार से अनेक आश्चर्य जनक बातों को संसार के कल्याण के लिये प्रगट करते हैं। यदि कोई मूर्ख व्यक्ति किसी वस्तु के रहस्य को न जान सके और अपनी अज्ञानता को दोष न देकर उस वस्तु को हेय समझने लगे तो उस व्यक्ति की बात माननीय न होगी। ऐसे ही विपक्षी द्वारा वेदों पर आक्षेप करना उसकी बुद्धि की न्यूनता का द्योतक है।

विपक्षी बार बार अपने को ब्रह्म बताने के लिए।
(१) अहं ब्रह्मास्मि (२) तत्वमसि (३) अयमात्मा ब्रह्म।

यह तीन वाक्यों का उल्लेख करता है। हम पूर्व अध्यायों में 'अयमात्मा पर विवेचन प्रस्तुत कर चुके हैं कि 'ओ३म' नाम से परमेश्वर का वर्णन करते हुए माण्डूक्योपनिषतकार ने ईश्वर के लिये कहा है कि जिस परमेश्वर का ओ३म नाम से मैंने यहाँ वर्णन किया है यही आत्मा ब्रह्म है।—इस श्रुति में जीवात्मा के लिए ब्रह्म शब्द नहीं आया है विपक्षी जानते हुए भी बार बार लोगों को धोखा देने को इस वाक्य को गलत रूप में प्रयुक्त करता है यह उसके लिये लज्जा की बात है।

इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद प्रपाठक ६ खण्ड ११ में उपनिषद कार ऋषि श्वेत केतु को जीवात्मा के विषय में बतला रहे हैं।

अस्यसोम्य महदो बृक्षस्योमूलेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्यो मध्ये अभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोद मास्तिष्ठति। १'

अर्थ—हे सौम्य! इस महान बृक्ष का जो मनुष्य जड़ में अभिहनन करे तो वह वृक्ष जीता हुआ रस गिराये, जो मध्य में अभिहनन करे तो वह जीता हुआ रसता रहे और जो अग्र भाग में अभिहनन करे तो भी वह वृक्ष जीता हुआ रसता रहे, पर सूखे या मरे नहीं। क्योंकि यह वृक्ष जीव से और आत्मा से परिपूर्ण है। इसमें जीवन भी है। इसीलिए पानी पीता हुआ हर्ष से रहता।

अस्ययदेका ᳪ शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यत्तेवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच ॥२॥

अर्थ—इस वृक्ष की जब एक शाखा को जीव छोड़ देता है तो वह सूख जाती है, तीसरी को छोड़ देताहै तो वह सूख जाती है और यदि जीव सारे वृक्ष को छोड़ देता है तो सारा वृक्ष सख

जांता है। सौम्य ! निश्चय ऐसे ही मनुष्य शरीर को जान।

जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति स य एषोऽणिमैतदात्म्य मिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥ ३ ॥

अर्थ—निश्चय से यह शरीर आत्मा रहित ही मरता है, आत्मा नहीं मरता। मरणभाव आत्मा में नहीं है। वह सदा अमर सत्ता है, वह जो यह अविनाशी आत्मा है, परम सूक्ष्म है। यह आत्मभाव है। यह सर्व, वह सत्य है, परम सत्य है। हे श्वेत केतु ! (तेरे शरीर में) वह आत्मा तू है। श्वेत केतु ने कहा, भगवन् ! मुझको और भी उपदेश देव। महर्षि अरुणि ने कहा—सौम्य ! तथास्तु !

उपनिषद् के उक्त प्रसंग से स्पष्ट है कि ऋषि ने श्वेत को शरीर में व्याप्त आत्मा की सत्ता के कारण शरीर व वृक्ष का जीवित रहना आत्मा के वृक्ष व शरीर के त्याग देने से उसकी मृत्यु होना समझाया था और उसे बताया था कि तू (जीवित शरीर की अवस्था में) अर्थात् तू भी वही आत्मा है जैसी कि प्रत्येक जीवित वृक्ष व जीवधारी में होती है यह वाक्य कहा था। इसमें मनुष्य को ब्रह्म या परमात्मा कहां कहां है जो विपक्षी ने लिख मारा है। सिद्ध है कि इसमें भी जीवात्मा को ईश्वर नहीं बताया गया है। विपक्षी ने इसमें भी छल से काम लिया है। हम भी विपक्षी के बारे में कह सकते हैं कि जिसने परमार्थ प्रकाश जैसी महामूर्खता पूर्ण पुस्तक लिखकर जनता को धोखा देने की कोशिश की है, जिसने रद्दी पुस्तक के ४) दाम रखकर जनता को लूटने खाने का धन्धा चालू कर रखा है।

जिसने ऋषि दयानन्द जी महाराज को गालियां दी हैं, जो देव वा ईश्वर का विरोधी बन रहा है, हे हमारे विपक्षी ! ऐसा बुद्धिहीन व्यक्ति 'ततत्वमसि' वह तुम ही हो। तो इस वाक्य का अर्थ यह कदापि नहीं होगा कि विपक्षी को हम ईश्वर मानते हैं या इसका अर्थ यह है कि जीवात्मा ईश्वर है।

इसी प्रकार चारों वेदों के ज्ञाता विद्वान पुरुष को यज्ञ में ब्रह्मा बनाया जाता है। यज्ञ में उद्गाता—अध्वर्यु आदि के स्थान भी होते हैं। तो कोई व्यक्ति यज्ञ में जाकर पूछे 'त्वं कोऽसि' अर्थात् तुम कौन हो तो जो व्यक्ति ब्रह्मा के आसन पर बैठा होगा वह कहेगा 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ब्रह्मा हूँ" तब उस वाक्य का अर्थ यह नहीं होगा कि जीवात्मा परमेश्वर या ब्रह्मा है। रेलवे का बाबू कहेगा 'अहं रेल बाबू अस्मि'। तहसील का चपरासी कहेगा 'अहं चपरासीऽस्मि' मैं चपरासी हूँ। यह तो संस्कृत में बोल चाल की भाषा के वाक्य हैं। इन वाक्यों से जीवात्मा को ईश्वर सिद्ध करना बड़ी भारी शरारत है। इसी प्रकार विपक्षी कई वेद मन्त्रों को उपस्थित करता है और उनमें वेदों का मनुष्यकृत होना सिद्ध करने का छल पूर्ण प्रयास करता है। वह ऋग्वेद के एक पूरे मन्त्र का आधा भाग निम्न प्रकार उपस्थित करता है।

अथा सोमस्य प्रयती युवाभ्यामिन्द्राग्नीस्तोमं जनयामि नव्यम्।

(ऋ. मं १ अ १६ सू १०९ मंत्र २)

इस मन्त्र की व्याख्या निम्न प्रकार होती है।—ईश्वर उपदेश देता है कि हे मनुष्यो !

(अथ-हि) अधीर (युवाभ्यां) तुम दोनों स्त्री पुरुषों को (सोमस्य) ऐश्वर्य के (प्रयती) देने के लिए (नव्यं) सदा

नवीन रहने वाले (स्तोमं) गुणों के प्रकाश को (जनयामि) मैं प्रगट करता हूं।

इस मन्त्र भाग के उपरोक्त अर्थों से प्रगट है कि इससे वेद के ईश्वरी ज्ञान होने पर कोई भी आक्षेप नहीं बनता है। विपक्षी एक दूसरे मन्त्र का आधा भाग प्रस्तुत करता है।

ऋषे मन्त्र कृतां स्तोमैः कश्यंयोद्धर्धं यन्गिरः ॥

(ऋ ६।२।१४४।२)

इसका अर्थ निम्न प्रकार होता है। ईश्वर मनुष्यों को उपदेश देता है:—

"(ऋषे) मन्त्रार्थ के द्रष्टा ! (कश्यप) हे तत्व ज्ञान के देखने वाले ! तू (मन्त्र कृतां) मन्त्रों के उपदेश देने वाले विद्वानों के (स्तोमैः) उपदिष्ट मन्त्रसमूहों से (वर्द्धयन्गिरः) अपनी वाणी को बढ़ा।"

इस मन्त्र के अर्थों पर भी कोई आक्षेप नहीं बनता। है। जैसे 'स्वर्णकार' का अर्थ स्वर्ण बनाने वाला न होकर स्वर्ण से बनाने वाला होता है, वैसे ही मन्त्र कृतां' (मन्त्रकार) का अर्थ मन्त्र बनाने वाला न होकर मन्त्रों का उपदेश करने वाला होता है। कदाचित विपक्षी को 'मन्त्र कृतां' पद देखकर भ्रम हो गया है जो दूर हो जाना चाहिये। विपक्षी तीसरा प्रमाण पेश करता है—

युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्तोऽग्ने रयिं यशसंधेहिनव्यसीम् ॥

अर्थ–परमेश्वर उपदेश देता है—   (ऋ ६।१।८।५)

(अग्ने) अग्रणी नायक व राजन् तू (युगे युगे) प्रति वर्ष (गृणद्भ्यः) उपदेश देने वाले विद्वानों को (विदथ्यं)

युद्ध व यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों से उत्पन्न (रयिं) ऐश्वर्य वाधन (यशसं) अन्न और यश (नव्यसी) शुभ वाणी और सत्कार क्रिया को (धेहि) दियाकर।

भावार्थ–राजा या नेता को चाहिये कि वह विद्वानों का धन व वाणी से प्रतिवर्ष सत्कार किया करें।

विपक्षी के इस प्रकार से भी वेद पर कोई आक्षेप नहीं आता है। विपक्षी चौथा प्रमाण पेश करता है।

ये च पूर्व रिषयो च नूतना, इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।

इस मन्त्र द्वारा प्रजा अपने राजा से अथवा आचार्य से प्रार्थना करे कि हे (इन्द्र) एश्वर्यवान राजन् वा आचार्य ! (ये च ऋषयः) जो मन्त्रार्थों को, सत्य ज्ञानों को देखने व जानने वाले (पूर्वे) पर्व काल के अवकाश प्राप्त वृद्ध गुरुजन और (ये च नूतना) जो ये नये, नव शिक्षित (विप्राः) विद्वान जन हैं, वे (ब्रह्माणि जनयन्त) वेद मन्त्रों के अर्थों का, वेद ज्ञान का प्रकाश करें। (ऐसी धर्मोपदेश की व्यवस्था की जावे।)

इस मन्त्र पर भी कोई आक्षेप नहीं बनता है। अब विपक्षी पांचवा मन्त्र पेश करता है।

स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्य सावचः। स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे॥ (ऋ० २।३।२१५)

विपक्षी ने यह आधा मन्त्र पेश किया है। इसके ऊपर की पंक्ति है:—

उतत्ये देवी सुभगे मिथू द्दशोषासानक्ता जगतामवीजुवा॥

परे मन्त्र का अर्थ होता है:—(सुभगे) हे ऐश्वर्यवान (देवी) देवी ! तू (त्रिवयाः) तीनों अवस्थाओं को भोगने वाली

(पृथिवी) पृथ्वी के तुल्य सहनशील एवं प्रजा को धारण करने वाली है। जैसे (उषसानक्ता) दिन व रात (मियूद्धशा) आपस में एक दूसरे को देखने वाले एवं (त्ये) वे (अपीजुवा) प्राणियों के लिए प्रेरणा देने वाले तथा (जगताम्) संसारस्थ मनुष्यादि (च) और (स्थातुः) स्थावर वृक्षादि के पालक होते हैं, वैसे ही हम लोग भी होवें। (उत्त)और जैसे (नव्यसा) नवीन (वचः) वचनों से (वयः) अभीष्ट अवस्था को प्राप्त करने के लिए (यत्) जिस परमेश्वर की (उपस्तिरे) निकट से, तन्मय होकर (स्तुषे) स्तुति करता हूँ, वैसे ही तू भी (वामः) स्तुति किया कर।

यह मन्त्र पति द्वारा पत्नी को उपदेश देने के रूप में वेद में आया है। ग्रहस्थ पुरुषों को अपनी पत्नी को उक्त प्रकार से उपदेश देना चाहिये।

अब विपक्षी छटा मन्त्र पेश करता है:—

यज्ञेनेन्द्रमवसाचक्रे अर्वागैनं सुम्नायनव्यसे ववृत्याम्।
यः स्तो मेभिर्वावृधे पूर्व्यैभिर्योममध्यमेभिरुत नूतनेभिः॥
(ऋ० ३।३।३२।१३)

(यः) जो मनुष्य (पूर्वेभिः) प्राचीन, पुरानी बातों में कुशल (मध्यमेभिः) बीच में हुई बातों का अनुभवी और (नूतनेभिः) नवीन (स्तोमेभिः) प्रशंसा युक्त कर्मों में (वावृधे) अपने को बढ़ाता है, वा बढ़ता है, (यः) जो (नव्यसे) नवीन (सुम्नाय) सुख के लिए (यज्ञेन) युक्त व्यवहार व यज्ञ से (अर्वाक एनम्) अपने पीछे की, भूतकाल काल में प्राप्त यश की (अव से)रक्षा करता है, वह जीवन में (इन्द्रिय) ऐश्वर्य को (आ चक्रे-आववृत्याम्) भले प्रकार प्राप्त करता है।

इस मंत्र के संबन्ध में विपक्षी का यह लिखना कि "इसमें पुरातन, मध्यतन और अधुनातन स्तोत्रों का उल्लेख है, जिससे मालूम होता है कि तीनों समय में नये मंत्र बने हैं।" यह सब व्यर्थ की बकवास है।

विपक्षी सातवां मंत्र पेश कर करता है—

इयंते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी। अस्माभिस्तुभ्यंशस्यते॥
(ऋ० ३।५।६२।७)

यह मंत्र प्रजा के द्वारा राजा वा विद्वान पुरुष की स्तुति में वेद में प्रयुक्तहुआ है। प्रजा कहती है। हे (पूषन) पुष्टि करने वाले वा पालन करने वाले (आघृणे) सब प्रकार प्रकाशित (देव) उत्तम गुणों से युक्त विद्वान वा राजन्! (ते) आप की जो (इयम) यह (नव्यसी सुष्टुतिः) नवीन प्रशंसा वा यशवर्तमान है वह (अस्माभिः) हम लोगों से (तुभ्यम्) आपके लिए (शस्यते) उच्चारण की जाती है।

जो लोग धर्म युक्त उत्तम कार्यों को करने से यशस्वी होते हैं, उनसे आनन्दित होकर सभी लोग उनका यशोगान करते हैं। यह इस वेद मंत्र का आशय है।

विपक्षी आठवां मन्त्र पेश करता है।

नूनव्यसे नवीयसे सूक्ताय साधया पथः। प्रत्नवद्रोचयारुचः॥
(ऋ ६। १। ६। ८)

यह मन्त्र भक्त की ईश्वर से प्रार्थना के रूप में वेद में प्रयुक्त हुआ है। भक्त प्रार्थना करता है हे प्रभो! (नव्य से) अतिस्तुत्य और (नवीयसे) सदा नवीन, नित्य (सूक्ताय) उत्तम वचन के (पथः) ज्ञान मार्गों को (साधय) हमारे लिए प्रगट कर या बतला, और (प्रत्नवत) पूर्व के समान (रुचः) अपनी कान्ति को (रोचम) प्रकाशित कर।

विपक्षी नवां मन्त्र पेश करता है—

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवां एहवक्षति॥
(ऋ १।१।१।२)

यह मंत्र आचार्य द्वारा शिष्य को उपदेश के रूप में वेद में प्रयुक्त हुआ है। आचार्य कहता है—

(पूर्वेभिः) वर्तमान वा पहिले समय के विद्वान (नूतनैः) वेदार्थ पढ़ने वाले ब्रह्मचारी, (ऋषिभिः) वेद मंत्रों के अर्थों को देखने वा साक्षात करने वाले ऋषि लोग, इन सभी को (अग्निः) वह परमेश्वर (ईड्यः) स्तुति करने योग्य है। (स) (उत) वही परमेश्वर (इह। इस संसार में वा इस जन्म में (देवान्) उत्तम इन्द्रियां व उत्तम भोग्य पदार्थों को (आवक्षति) प्राप्त कराता है।

विपक्षी दसवां मंत्र पेश करता है

अन्य देवाहुर्विद्याथा अन्य दाहुरविद्यायाः। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्त द्विचचक्षिरे॥ (यजु ४०।१३)

वेद में इस अध्याय में इसके पूर्व के व इसके बाद के मन्त्र में विद्या और अविद्या क्या है और उसका फल क्या होता है, इस विषय का विवेचन किया गयाहै वेद में इससे पूर्व के मन्त्र में बताया गया है कि अविद्या जो मनुष्य अनित्य में नित्य, अशुद्ध में शुद्ध, दुख में सुख और अनात्म पदार्थों में आत्म बुद्धि रखते हैं अर्थात् परमेश्वर को छोड़कर गुण रहित जड़ पदार्थों में उपासना बुद्धि रखते हैं वे घोर अन्धकार को प्राप्त होते हैं और जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध के जानने मात्र अवैदिक आचरण (विद्या) में लीन रहते हैं वे उससे भी अधिक अज्ञानान्धकार को प्राप्त होते हैं। इसी विषय में इसबीच के मन्त्र में विद्वानों के पारस्परिक सम्बाद के रूप में बतलाया है।

(विद्यायाः) विद्या से (अन्यत्) दूसरा ही फल (आहुः) बतलाया गया है और (अविद्यायाः) अविद्या से (अन्यत्) दूसरा भिन्न प्रकार का फल व परिणाम (आहुः) बतलाया गया है (इति शुश्रुम धीराणाम्) इस प्रकार आत्मज्ञानी विद्वानों से सुना है (ये तत् नः विचचक्षिरे) जिन्होंने उसको हम को प्रगट किया है।

इसके आगे के मन्त्र में विद्या और अविद्या के स्वरूप का वर्णन करते हुए बताया है कि जो विद्वान पूर्वोक्त विद्या और उसके सम्बन्धी साधन तथा अविद्या और उसके साधनों को और उनके मर्म को साथ ही साथ जानते हैं वह (अविद्या) शरीरादि जड़ पदार्थ समूह से किए गए पुरुषार्थ से (मृत्युम) मरण दुःख के भय को उल्लंघन करके (विद्या) आत्मा और शुद्ध अन्तः करण के संयोग में जो धर्म और उससे उत्पन्न हुए यथार्थ दर्शन रूप विद्या से अविनाशी परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

वेद के इन मन्त्रों में पारस्परिक सम्बाद के रूप में विद्या और अविद्या के रहस्य पर प्रकाश डाला गया है। यह वेद की वर्णन शैली की विशेषता है कि वह अनेक रूपों में ज्ञान विज्ञान के रहस्यों का वर्णन करता है जैसा कि हम इस विषय में पूर्व भी प्रकाश डाल चुके हैं। जो लोग वेद की वर्णन शैली को नहीं समझते हैं वे विपक्षी के समान व्यर्थ के आक्षेप वेद पर किया करते हैं। वेद या किसी भी ग्रन्थ पर कलम उठाने से पूर्व उस के विषय को प्रतिपादन करने की शैली को जानना आवश्यक होता है। पर विपक्षी तो साक्षात् ब्रह्म बनने के नशे में अन्धा हो रहा है। उसे किसी भी बात को समझने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती है। वह तो उल्टे सीधे आरोप वेद पर लगा कर पैसा कमाने व नाम चाहने की धुन में लगा हुआ है। इसी सिलसिले में विपक्षी ग्यारहवां मन्त्र पेश करता है।

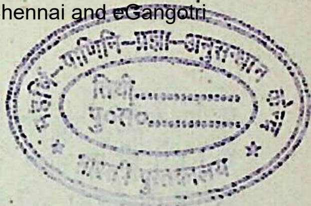
तनूपा अग्नेऽसि तन्वम्मे पाहि, आयुर्दाअग्ने स्यायुर्मेदेहि। वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽअनंन्तन्म-आप्रण ॥ (यजु ३।१७)

इस मंत्र में भक्त परमेश्वर से प्रार्थना करता है कि (अग्ने) परमेश्वर ! तुम शरीर का पालन करने वाले हो, मेरे शरीर की रक्षा करो। हे परमेश्व तुम जीवन दाता हो मुझे दीर्घ आयु दो, हे परमेश्वर ! तुम ज्ञान वल व तेज देने वाले हो, मुझे भी ज्ञान बल व तेज प्रदान करा । मेरे शरीर में जो भी कमी हो उसे पूर्ण करदो।

यह मन्त्र भक्त की भगवान से प्रार्थना के रूप में वेद में प्रयुक्त हुआ है जो यह बताता है कि भक्त को परमात्मा से किस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए जिससे उसका कल्याण हो सके।

वेद परम प्रभु का सृष्टि के प्रारम्भ में प्रदत्त ज्ञान का भंडार है। इसमें मनुष्यों की रचनाएँ नहीं हैं हां पारस्परिक सम्वाद रूप में सैकड़ों स्थल हैं जिनके द्वारा परमेश्वर ने ज्ञान का वेदों में समावेश किया है इस प्रकार इस अध्याय में विपक्षी ने जो भी आक्षेप वेदों के मनुष्य निर्मित सिद्ध करने के लिए किए हैं वह सर्वथा गलत व निःसार सिद्ध हो चुके हैं। इस अध्याय से स्पष्ट हो चुका है कि विपक्षी को वेद मन्त्रों में समझने की भी बुद्धि का अभाव है आर्य समाज का यह सिद्धान्त सर्वथा सत्य एवं अकाट्य रहा है कि वेद निराकार ईश्वर सर्वान्तर्यामी रूप से प्रारम्भ सृष्टि में ४ ऋषियों के अंतः करण में प्रगट किए और उन ऋषियों ने इस ईश्वरीय ज्ञान का संसार में प्रचार किया।





अध्याय ९

इस अध्याय में भी विपक्षी ने वेद के ईश्वरीय ज्ञान होने पर आक्षेप किये हैं। अपनी थोथी दलीलों से विपक्षी यह सिद्ध करना चाहता है कि वेदों में पुनरुक्ति दोष हैं, वेदों के बनाने वाले अनेक ऋषि हुए हैं। इस सम्बन्ध में विपक्षी गायत्री मंत्र को प्रमाण स्वरूप उपस्थित करता है। विपक्षी इतना अज्ञानी है कि वह पुनरुक्ति का अर्थ भी नहीं समझता है। पुनरुक्ति का अर्थ होता है एक ही बात को निरर्थक रूप से बार २ कहना। विपक्षी की सारी पुस्तक में एक ही बात को एक ही रूप में दसियों बार लिखा गया है। एक एक आपेक्ष को वह कई २ बार एक ही अध्याय में लिखता है और फिर दूसरे अध्यायों में भी उसी बात को बार २ दोहराता जाता है जबकि एक प्रश्न या ऐक बात का एक बार लिख देना ही यथेष्ठ था। विपक्षी की सारी पुस्तक पुनरुक्ति दोष से भरी पड़ी है और उसे वहां पुनरुक्ति दोष तो अन्धा होने से दीखता नहीं है पर वेदों में जो किसी २ मंत्र का दूसरे अध्याय में अत्यन्त आवश्यक सम्बन्ध होने से यथा स्थान वर्णन किया गया है उसमें अपनी अज्ञानता से उसे पुनरुक्ति सूझ रही है। इसी अध्याय में विपक्षी गायत्री मंत्र के महा व्याहतियों से रहित "तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि-धियो योनः प्रचोदयात्" इस मंत्र को ५ बार लिखा है। जबकि केवल एक बार मंत्र को लिख कर केवल इतना लिखना

पर्याप्त था कि यह मंत्र वेदों में अमुक अमुक स्थलों पर आया है। इसे ही पुनरुक्ति कहते हैं। विपक्षी अपने अन्धे पन का इलाज तो करता नहीं है पर वेदों में दोष ढूँढने बैठा है।

एक ही प्रमाण को आवश्यकता वश भिन्न २ प्रकरणों में विषय को प्रतिपादन करने की दृष्टि से प्रयुक्त करना पुनरुक्ति नहीं कहाती है वेदों में जहां जहां ईश्वर प्रार्थना उपासना का महत्वपूर्ण प्रकरण भिन्न अध्यायों में आया है और जहां इस मन्त्र के द्वारा मानव को ईश्वर प्रार्थना का महत्वपूर्ण प्रकार बताना परमेश्वर को इष्ट था वहां २ उसका प्रयोग किया जाता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि वेदों की दृष्टि में परमेश्वर से ज्ञान की याचना करने के लिए मनुष्यों के लिए यह मन्त्र विशेष महत्वपूर्ण है।

हम पूर्व अध्यायों में यह बतला चुके हैं कि अत्यन्त प्राचीन काल में वेद मन्त्रों पर समाधिस्थ होकर गम्भीर चिन्तन के द्वारा जिन २ ऋषियों ने रहस्यार्थों का पता लगाया था। सन्मान एवम् स्मृति के लिए उन २ मन्त्रों व सूक्तों के ऊपर उनके नाम लिखे जाते रहे हैं। यह मान्यता केवल ऋषि दयानन्द जी महाराज की नहीं है, प्राचीन शास्त्रों में इसके लिए प्रमाण उपस्थित है। किन्तु विपक्षी घोर नास्तिक होने से वेदादि शास्त्रों पर विश्वास नहीं करता है। अतः हम शास्त्रीय प्रमाणों को यहां लिखना निरर्थक समझते हैं। विपक्षी ने गायत्री मन्त्र का अर्थ लिखकर इस पर अपना पाखण्ड प्रदर्शित किया है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में इस मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार किया है:—

(सवितुः) "यः सनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है

(देवस्य) "योः दीव्यति दीव्यतें वासदेवः" जो सब सुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं, उस परमात्मा का जो (वरेण्यं) "वर्त्तु महम्" स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (भर्गः) "शुद्ध स्वरूपम्" शुद्ध स्वरूप और पवित्र करने हारा चेतन्य स्वरूप है (तत्) उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग (धी महि) "धरे महि" धारण करें। किस प्रयोजन के लिए कि (यः)"जगदीश्वरः" जो सविता देव परमात्मा (नः) "अस्माकम्" हमारी (धियां) "बुद्धीः बुद्धियों को (प्रचोदयात्) "प्रेरयेत्" प्रेरणा करे, अर्थात् बुरे कर्मों से छुड़ाकर अच्छे कर्मों में प्रवृत करे।

यह अर्थ पर्वथा स्पष्ट और सरल है। इसमें किसी भी पद के अर्थ में खींचातानी नहीं है। पर विपक्षी ने खींचातानी करके 'सवितः' शब्द का अर्थ अपने शरीर में बन्द 'जीवात्मा' किया है। विपक्षी ईश्वर के अस्तित्व का विरोधी है अतः हर जगह उसे अपना उल्टा अर्थ करने की धुन सवार है। चाहे उसका अर्थ ठीक बैठे भी या नहीं। विपक्षी अर्थ करता है—

(यः) जो, (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों की, (प्रयोदयात्) प्रेरणा करता है। या प्रेरणा करे (तत्) उस (सविता) प्राणियों को गर्भ द्वारा उत्पन्न करने वाले (देवस्य) देव के (वरेण्यंम्) वरणीय वरण करने योग्य अर्थात सर्व श्रेष्ठ या सर्वोत्तम (भर्गः) तेज का या ज्योति का (धीमहि) ध्यान करते हैं।

विपक्षी भावार्थ करता है 'जो हम लोगों की बुद्धि में प्रेरणा देता है अर्थात् जो हम लोगों की बुद्धि का प्रेरक है उस आत्म देव के अति श्रेष्ठ तेज या ज्योति का हम ध्यान करते हैं।

हम विपक्षी से पूछते हैं कि विपक्षी स्वयं कौन है और उसका आत्मा उससे प्रथक कौन है। विपक्षी और उसके आत्मा में क्या रिश्ता है? विपक्षी का स्वरूप क्या है? चिन्तन करने वाला विपक्षी जिसका चिन्तन करता है उस आत्मा से अपने को किस तर्क व प्रमाण से प्रथक सिद्ध करता है? जिस अपने से प्रथक आत्मा का अपने शरीर में विपक्षी चिन्तन करता है उसका स्वरूप उसकी ज्योति या तेज क्या व कैसा है? विपक्षी के अर्थ में आत्मा को अपने से पृथक ('तत्'–उस) शब्द से सम्बोधित किया गया है। विपक्षी का उससे प्रथक आत्मा किसका तथा कैसे गर्भ धारण करता है, विपक्षी से प्रथक उसका आत्मा गर्भ काहे में धारण करता है क्या विपक्षी के आत्मा के विपक्षी के शरीर से प्रथक कोई योनि गर्भाशय होता है जिसमें वह गर्भ धारण करके प्राणियों का प्रसव किया करता है? विपक्षी अपने से प्रथक अपनी आत्मा का चिन्तन कैसे करता है। 'आत्मा' शब्द तो स्त्रीलिंग है तब मन्त्र में प्रयुक्त 'देव' शब्द जो पुलिंग है आत्मा के लिए सम्बोधन कारक कैसे बना दिया गया। विपक्षी का उससे प्रथक आत्मा उसके शरीर में विपक्षी से प्रथक किस हिस्से में व्याप्त या निवास करता है? क्या विपक्षी जो कुछ भी कार्य करता है, सोचता है, लिखता है, दुःख सुख का अनुभव करता है वह अपने शरीर में व्याप्त आत्मा से प्रथक किसी अन्य सत्ता के सहारे से करता है? विपक्षी के शरीर में कितनी आत्मायें उस विपक्षी से प्रथक रहती हैं? विपक्षी की आत्मा उस को कब अच्छे कामों में प्रेरणा करती है? और जब आत्मा प्रेरणा करती है तो विपक्षी किस माध्यम से यह अनुभव करता है कि अमुक बात की प्रेरणा उसे उस के अपने पन से प्रथक अस्तित्व वाली आत्मा से प्राप्त है?

उक्त मन्त्र का अर्थ जो विपक्षी ने किया है उसी के लिए फांसी का फन्दा बन गया है। विपक्षी अपने से अपने आत्म-देव को प्रथक मानकर उसका ध्यान करता है तो इससे स्पष्ट है कि विपक्षी कोई और बला है और जिस आत्मदेव का वह ध्यान करता है वह कोई और बला है। विपक्षी का मंत्रार्थ गलत है। ऋषि दयानन्द का अर्थ ठीक है। जीवात्मा (मनुष्य) परमेश्वर का ध्यान करते हैं जो सम्पूर्ण जगत का 'सविता' उत्पन्न करने वाला है। परमेश्वर सर्व व्यापक घट घट वासी है। जो ज्ञानी मनुष्य अपनी बुद्धि को ईश्वरार्पण करके सच्चे हृदय से सत्पथ प्रदर्शन की याचना करते हैं परमेश्वर उनको सन्मार्ग में प्रेरित करता है। और जो दम्भी मूर्ख लोग अपने ही गर्व में चूर रहते हैं अथवा ईश्वर से मार्ग प्रदर्शन नहीं चाहते हैं वे अन्धकार में ठोकरें खाया करते हैं। जैसे कि विपक्षी खा रहा है। वह विचारा यह भी नहीं जानता कि वह कौन है और उसका आत्मा कौन है, उसका आत्मा उससे प्रथक है या कि वह स्वयं आत्मा ही है ?

विपक्षी ने इसी प्रकार वेद के एक अन्य मन्त्र के भी अर्थ का अनर्थ लिख कर वितण्डावाद किया है। वह मंत्र है—

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु। योऽस्मान द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ (यजुः ३५–१२)

ऋषि दयानन्द जी महाराज इस मन्त्र का अर्थ करते हैं:–

हे मनुष्यो ! जो (आपः) प्राण वा जल तथा (ओषधयः) सोम आदि औषधियां (नः) हमारे लिए (सुमित्रियाः) सुन्दर मित्रों के तुल्य हितकारिणी (सन्तु) होवे तुम्हारे लिए भी वैसी हों (यः) जो (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करता (च) और (यम्) जिस दुष्टाचारी से (वयम्) हम लोग (द्विष्मः)

अप्रीति करें (तस्मै) उसके लिए वे पदार्थ (दुर्मित्रिया) शत्रुओं के तुल्य दुःखदायी (सन्त) होवें ।

भावार्थ—जो रागद्वेष आदि दोषों को छोड़ कर सबमें अपने आत्मा के तुल्य बर्ताव करते हैं उन धर्मात्माओं के लिए सब जल औषधि आदि पदार्थ सुखकारी होते हैं, और जो स्वार्थ में प्रीति तथा दूसरों से द्वेष करने वाले हैं उन अधर्मियों के लिए ये सब उक्त पदार्थ दुःखदायी होते हैं । मनुष्यों को चाहिए क धर्मात्माओं के साथ प्रीति और दुष्टों के साथ निरन्तर अप्रीति करें ।

यह मंत्र मनुष्यों का परस्पर में व्यवहार कैसा हो इसको बतलाता है । दुष्टों के पास दुष्टता से उपार्जित धन व अन्न उनके विनाश का कारण बनता है । दूषित प्रकार से उपर्जित अन्न के सेवन से मनुष्यों के मन व बुद्धि मलीन बनते हैं । वही अन्न अच्छे प्रकार से उपार्जित हो तो सज्जनों को लाभकारी होता है । अन्न तो एक ही होता है पर उसका प्रभाव दो स्थानों पर दो प्रकार का होता है । इसी प्रकार से औषधियां भी सज्जन धर्मात्मा लोगों को लाभ करती हैं वहां दुर्जनों पर उनका कभी २ उनके कर्म फलों के कारण उल्टा हानिकारक प्रभाव हो जाता है । अग्नि से भोजन पकता है, वही अग्नि दुष्कर्मों के भाग्योदय से घर के भस्म करने का कारण बन जाती है । कुआ जीवन भर मनुष्य का जल से पालन करता है, पर समय की गति से वही कुंआ मनुष्य की मृत्यु का कारण बन जाता है । अतः सज्जन धर्मात्मा लोगों को दुष्टजन यदि कष्ट पहुँचाते हैं और त्रस्त होकर सज्जन लोग ऐसी भावना करने लगें कि अन्न औषधियां दुर्जनों के लिए हानिकारक हो जावें तो धर्मात्मा लोगों व महानात्माओं के इस प्रकार के शापों व भावनाओं का प्रत्यक्ष उनकी इच्छानुसार प्रभाव देखने में

आता है। दुष्टों की इच्छा शक्ति बलहीन होती है सज्जनों का, महान पुरुषों का बल उन की इच्छा शक्ति में निहित होता है। वेद मंत्र ने महान पुरुषों को दुर्जनों से अपनी रक्षा करने एवं दुष्टों का विनाश करने के लिए अपनी मनः शक्ति का प्रयोग करने का रास्ता बताया है जो शस्त्र ग्रहण करने से अधिक प्रबल होता है। इसे ही वरदान या अभिशाप कहते हैं। विपक्षी तो ईश्वर विश्वासी है ही नहीं। वह वेद मंत्रों की वर्णन शैली एवं उपदेश देने के प्रकारों को क्या समझ सकता है। वेदों में कहीं गुरु शिष्य के रूप में कहीं राजा प्रजा के रूप में, कहीं पति पत्नी के रूप में, कहीं ईश्वर जीवों के रूप में सम्वाद आदि के माध्यम से ज्ञान विज्ञान के उपदेश दिए गये हैं। वेदों की इसी वर्णन शैली की विशेषतः है कि वेद मंत्रों का विनियोग, उपदेशों में, जिज्ञासुओं में, कर्म काण्ड में जहां भी जैसी आवश्यकता होती है किया जाता है। यह वेदों की आदर्श वर्णन शैली की विशेषता है जो संसार के अन्य किसी भी धर्म ग्रन्थ को प्राप्त नहीं है। वेदों की इस शैली के आधार पर यह कहना कि वेद मनुष्यों द्वारा बनाये गए हैं कोरा पागलपन है जो हमारे नास्तिक विपक्षी पर सवार है।

अध्याय १०

अपनी पुस्तक के दशवें अध्याय में विपक्षी ने कोई भी नई बात नहीं लिखी है। विपक्षी एक ही बात को कई अध्यायों में बार २ लिखता चला आ रहा है कि वेदों में कुछ ऐसे मन्त्र हैं जो एक से अधिक बार वेदों में आये हैं, विपक्षी उसे पुनरुक्ति दोष बताता है। उस अध्याय में भी विपक्षी ने ऐसे ही चन्द मन्त्रों को उद्धृत किया है जैसा कि वह गत अध्यायों में कई बार करता रहा है। हमने पीछे बताया है कि किसी प्रसंग में किसी वेद मन्त्र को आवश्यकता वश पुनः लिखना पुनरुक्ति नहीं कही जाती है। बल्कि पुनरुक्ति उसे कहते हैं कि बिना आवश्यकता के एक ही बात को बार २ कहे जाना। जैसा कि अपनी अज्ञानता वश विपक्षी बार २ एक ही आरोप को दोहराता चला जाता है। यदि विपक्षी के पास नया आक्षेप नहीं है तो व्यर्थ में कागज काले करके अपनी किताब का आकार क्यों बढ़ाता है। विपक्षी की भाषा में उर्दू के शब्दों की भरमार है ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित विपक्षी कोई मुसलमान है जो हिन्दू के भेष में हिन्दू समाज के भोले लोगों को गुमराह करना चाहता है। यदि विपक्षी हिन्दू है और वैदिक शास्त्रों का पंडित बनता है तो उसकी भाषा परिमार्जित एवं विशुद्ध संस्कृत निष्ठ होनी चाहिए थी। परन्तु मौलवी टाइप की भाषा विपक्षी को उर्दू का ज्ञाता तो प्रमाणित करती है संस्कृत का पंडित नहीं बताती है।

विपक्षी का लेख बताता है कि उसने वेदादि शास्त्रों को किसी गुरु के द्वारा नहीं पढ़ा है। उसने किसी मौलवी से उर्दू सीखने के बाद कहीं से वेदों के ग्रन्थ देख दाख लिए हैं। अतः वह वेद मन्त्रों के गम्भीर रहस्यों से कोसों दूर रह गया है हमने लिखा था कि वेद प्रारम्भ सृष्टि में मनुष्यों को दिया जाने वाला परमेश्वर का ज्ञान है। जिस प्रकार ईश्वर निर्विकार, परम पवित्र, पक्षपात रहित अनन्त ज्ञान विज्ञान का भण्डार है उसी प्रकार उसका ज्ञान होने से वेद परम पवित्र, निर्विकार, पक्षपात रहित अनन्त का भण्डार है। यदि प्रारम्भ सृष्टि में मनुष्यों को परमेश्वर की ओर से वाणी एवं ज्ञान न मिलता तो मनुष्य सदा सर्वदा बज्रमूर्ख ही बना रहता, धर्मा धर्म की कोई व्यवस्था कभी लागू न हो सकती एवं मनुष्य के उत्पन्न होने का मूल उद्देश्य ही नष्ट हो जाता। जिस प्रकार प्रभु ने जीवों के कल्याण के लिए वायु जल, सूर्य, चन्द्र बनस्पति आदि की रचना की है उसी प्रकार मानव को उन्नति एवं सुख के मार्ग पर चलाने के लिए ज्ञान विज्ञान युक्त वेद प्रदान किए हैं। ईश्वरीय ज्ञान मानव की उत्पत्ति के साथ आता है। और महाप्रलय के आने तक पृथ्वी पर स्थिति रहता है। सृष्टि के मध्य में बार २ नहीं आता है। वेदों के अतिरिक्त अन्य जितनी भी अन्य मतों की पुस्तकें तौरेत बाइबिल व कुरान आदि हैं वे सभी घोर पक्षपात पूर्ण बातों से भरी पड़ी हैं। ज्ञान विज्ञान की उन पुस्तकों में कोई भी बात नहीं है। बुद्धि सृष्टि नियम, विज्ञान एवं ज्ञान के विरुद्ध बातों का उनमें समावेश है जब कि वेदों की एक भी बात को विश्व का कोई भी व्यक्ति किसी भी दृष्टि से मिथ्या सिद्ध नहीं कर सकता है। अतः विपक्षी का विश्व कल्याणकारी वेदों को मजहबी ग्रन्थ एवं मनुष्य कृत बताना मिथ्या एवं द्वेषपूर्ण आरोप

है जिसके लिए उसके पास कोई ठोस तर्क व प्रमाण नहीं है। विपक्षी वेदों की वर्णन शैली को समझने में असमर्थ है। वह वेदों के भाष्य करने के प्रकार को भी नहीं जानता है हमने गत अध्यायों में लिखा है कि वेदों के विषय को प्रतिपादन करने की शैली इतनी महत्वपूर्ण एवं अलौकिक है कि वेद के प्रत्येक मंत्र के त्रिविध (अध्यात्मिक, आधि दैविक एवं आधि भौतिक ज्ञान विज्ञान परक) अनेक अर्थ किए जा सकते हैं। उनका विनियोग भिन्न २ स्थलों पर उपदेश, वार्ता एवँ कर्म काण्डों के अवसरों पर यथावत् प्रसङ्गानुसार किया जा सकता है और किया जाता है। इसी प्रकार मानव के प्रत्येक सद् विचार एवं कार्य को वेदों के आधार पर वैदिक बनाया जाता है। वेदों के मन्त्र सूक्ष्म शब्दों से युक्त होते हैं परन्तु उनमें व्यापक एवं गम्भीर अर्थों का समावेश होता है। विद्वान जन जो वेदों की वर्णन शैली एवं उनके मन्त्रों में निहित अर्थों के रहस्यों को समझ सकते हैं उनकी सुव्यवस्थित व्याख्या करके नाना प्रकार के ज्ञान विज्ञान पूर्ण उपदेशों को जनता को बताते हैं वेदों का अर्थ समझने के लिए मनुष्य का सर्व विद्या निष्णात होना आवश्यक है। विपक्षी तो स्वयँ ईश्वर बनने के घमण्ड में चूर है उसे ज्ञान विज्ञान एवं नाना प्रकार की विद्याओं के भन्डार वेद मन्त्रों को न समझने की योग्यता है और न इच्छा है।

विपक्षी ने यजुर्वेद का एक मंत्र लिखा है—

सवर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन त्वष्टा सुदत्रो, विदधातु रायोऽनु मार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ (यजु० ८-१४)

वेद में गृहस्थाश्रम का विषय यहाँ चल रहा है। गृहस्थियों के पारस्परिक वार्तालाप के रूप में वेद उपदेश कर रहा है कि वे उत्तम दुग्धादि पदार्थों के सेवन से अच्छे स्वस्थ शरीर को

प्राप्त हों, मनो वल एवं कल्याणकारी बलवान प्राण वायु को धारण करके सुख का सम्पादन करें और अपने शरीरों को बलिष्ठ व्यवहार योग्य बनावें।

कितना सुन्दर उपदेश है। श्रेष्ठ गौदुग्ध का सेवन ऋतु अनुकूल विधि से पुष्टिकारक औषधियों के साथ सेवन करने से स्वास्थ कितना सुन्दर एवं पुष्ट हो जाता है इसके विज्ञान को समझना चाहिए। गौ को भोजन में यदि औषधियां खिलाई जावें तो जो दुग्ध उन औषधियों के गुणों से युक्तप्राप्त होगा वह अद्वितीय गुणशाली होगा। उत्तम दुग्ध से उत्तम रक्त, रक्तसे उत्तम वीर्य, वीर्य से उत्तम तेज की उत्पत्ति होगी। उत्तम स्वास्थ के साथ ही मनोवल भी विकसित किया जाना चाहिए। मनः शक्ति का विकास कैसे होता है, उससे स्वास्थ्य की प्राप्ति रोगों का विनाश, दूसरे व्यक्तिको प्रभावित करना, अपने मन की बात दूसरों के मन में डालना तथा दूसरे के मन की बात को स्वयं जान लेना, दूरस्थ देश में रहने वाले लोगों एवं वहां की बातों को स्वयं जान लेना भूतकाल एवं वर्तमान काल की अनेक गुप्त बातों को जान लेना आदि मनोवल के अनेक रहस्य हैं जो मनोविज्ञान शास्त्रियों के ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात हो सकते हैं। बलिष्ठ प्राण शक्ति के रहस्य भी प्राण चिकित्सा के शास्त्रों से सीखे जा सकते हैं। वेदमन्त्र में थोड़े से शब्दों में बताया गया है कि मानव को अपना आहार, विचार आदि सभी को ध्यान में रख कर अपनी व अपने समाज की उन्नति की बात सोचनी चाहिए।

इस मंत्र में बहुत से रहस्य छिपे हुए हैं जिन पर यदि हम विस्तार से व्याख्या करने लगें तो एक छोटी मोटी पुस्तक बन जावेगी। यहां हमने संक्षेप में बतलाया है कि वेदों के मंत्रों एवं रहस्यार्थों की खोज मानव को करनी चाहिए। वह परमेश्वर

के दिव्य ज्ञान का भण्डार है। मानव को उच्चत्तम ज्ञान की जितनी भी आवश्यकता हो सकती है वह वेद मंत्रों में समाविष्ठ है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने इस वेद मंत्र का संक्षेप में जो भावार्थ लिखा है वह सर्वथा सत्य है। मंत्र का भावार्थ ही वही है विपक्षी ने 'पयसा' शब्द का अर्थ दुग्ध होता है वह तो ठीक लिखा है, परन्तु दूध के साथ में 'पानी या शुद्ध रक्त द्वारा' यह कहां से घुसेड़ दिया है। विपक्षी अर्थों में स्वयं ४२० करता है, और ऋषि दयानन्द जी पर अर्थों में प्रक्षेप करने का दोष मढ़ता है। विपक्षी की कैसी उल्टी बुद्धि है।

विपक्षी लाख कोशिश करके भी वेदों के ईश्वरी ज्ञान होने का खण्डन नहीं कर सका है, यह स्पष्ट हो चुका है।

—:o:—

अध्याय ११

अपनी पुस्तक के ११ वें अध्याय में विपक्षा हवन शब्द की आड़ लेकर यज्ञ विज्ञान पर आक्षेप करता हुआ पदार्थ विज्ञान से अपनी अज्ञानता प्रगट करता है। वह लिखता है "हु=दानादनयो:' धातु से हवन शब्द बनता है। हु=धातु के दो अर्थ होते हैं, एक दान करना, दूसरा खाना। आग में जलाने के अर्थ में नहीं आ सकता है।"

विपक्षी भूलता है कि 'यज्ञ' शब्द के भी अर्थ-देव पूजा,' संगतिकरण और दान होते हैं। हवन और यज्ञ दोनों ही शब्द दान के अर्थ में समान रूप से आते हैं। दान का अर्थ होता है सात्विक धर्म भावना से पर कल्याण के निमित्त किसी को कुछ देना। देने के अनेक प्रकार होते हैं। किसी एक व्यक्ति को कुछ देना उसके कल्याण का निमित्त बनेगी किन्तु जो व्यक्ति यह भावना रखना है कि उसका दान संसार के प्राणी-अप्राणी जगत में सभी के कल्याण का साधन बने तो उसे उसके लिये दूसरा प्रकार अपनाना होगा। यज्ञ या हवन में जो भी पदार्थ डाले जाते हैं अग्नि के द्वारा सूक्ष्म होकर घृत के परमाणुओं से युक्त वे आकाशस्थ वायु के द्वारा जड़ व चेतन सम्पूर्ण जगत को पहुंचते हैं। आग में १ सेर मिर्चों को जला देने से उनके परमाणु जहां तक वे बहुत संख्या में पहुंचते हैं वहां तक प्रतीत होते हैं और जब वे व्यापक क्षेत्र में फैल जाते हैं तो वे सूक्ष्म मात्रा में सर्वत्र सभी को प्राप्त होते हैं। अमरीका में परमाणु बम फटने पर उससे उड़ी हुई सूक्ष्म आणुविक धूल सारी पृथ्वी पर फैल जाती है और जड़ व चेतन सभी को प्रभावित करती है,

यह नित्य ही वैज्ञानिकों की घोषणाओं से ज्ञात हो रहा है। इसी प्रकार सुगन्धित रोग नाशक, बल वर्धक मधुर एवं इन चार प्रकार की सामग्री से युक्त औषधि युक्त सामग्री के परमाणु अग्नि द्वारा सूक्ष्म होकर आकाशस्थ वायुमन्डल द्वारा सम्पूर्ण भूमण्डल एवं उसके चारों ओर मीलों ऊँचाई तक फैले हुए वायु मण्डल में व्याप्त होकर समस्त जड़ व चेतन जगत के कल्याण का साधन बनते हैं। एक परमाणु बम को यदि कोई खालेवे तो एक ही आदमी मर सकेगा, परन्तु फटने पर उसकी सामग्री के परमाणु रूप में हवा में फैलने से विश्व को प्रभावित करता है। इसी प्रकार खाया हुआ घृत या सामग्री चन्द मनुष्यों को प्रभावित करता है पर यज्ञाग्नि में होम करने से वह विश्व कल्याणकारी बनेगा।

धर्म क्या है ? धर्म का व यज्ञ का व्यापक अर्थ ही लोक कल्याणकारी कार्य है। अतः जो व्यक्ति विपक्षी की तरह केवल अपना ही पेट भरना जानते हैं, घोर स्वार्थी है; उनकी तो बात ही दूसरी है। पर जो लोग धर्म करना व अपने दान को विश्व कल्याण के लिये बिना किसी भी शत्रु मित्र के भेद भाव के देना चाहते हैं उन के लिये केवल हवन या यज्ञ का ही साधन है जिससे वे लोक कल्यण में अपनी शक्ति या दान को लगा सकते हैं। यह व्यक्तियों के समर्थन पर निर्भर करता है कि वे कितना धर्म या यज्ञ कर सकते हैं। जितना अधिक यज्ञ (होम) के करने में उतना ही बड़ा धर्म का सुख फल उनको प्राप्त होगा, व उनकी इस जन्म व अगले जन्म में सद्गित होगी।

दैनिक होम (यज्ञ) करने से उसके सूक्ष्म पदार्थों के परमाणु यज्ञ करने वाले के शरीर में नासिका द्वारा प्रवेश करके तत्काल उसके रक्त में मिश्रित हो जाते हैं और उसके शरीर गत रोगों का विनाश करके उसे स्वस्थ व निरोग बनाते हैं। अतः यज्ञ जहां विश्व कल्याण का हेतु है वहां यज्ञ कर्ता के सुख व स्वास्थ्य का भी साधक है। यह एक प्रकार की आयुर्वेदिक चिकित्सा भी है।

घर में धूप अगर बत्ती जलाने से दुर्गन्धि का निवारण एवं सुगन्धि का वातावरण बन जाता है। पर उस सुगन्धि में दुर्गन्ध को भेदन करने की शक्ति नहीं होती है। क्यों कि वह सुगन्धि के अणु धूम्र के स्थूलाकार में होते हैं। अग्नि के संयोग से एवं घृत के परमाणुओं से सयुक्तयज्ञीय परमाणुओं की भेदक शक्ति अत्यन्त तीव्र होती है। वह रोगाणुओ को छिन्न भिन्न एवं नष्ट कर देते हैं केवल शकर व घ्रत को जलाने से प्लेग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, यह वैज्ञानिको ने सिद्ध कर दिया है।

गन्दे स्थानों की सफाई करनी चाहिए एवं वायु मन्डल के शोधन के लिए यज्ञ किया जाना चाहिए इससे मकान नगर व प्रदेश में स्वच्छता पैदा होती है। यज्ञों में विशेष प्रकार की सामिग्री का प्रयोग करके विशेष विधियों द्वारा बड़े यज्ञ करने से जब भी चाहिए वर्षा हो जाती है, बादल हटाये जाकर अति वृष्टि रोकी जा सकती है, टीड़ी दल को आकाश में ही नष्ट किया जा सकता है उष्ण ऋतु में यज्ञ द्वारा वायु मन्डल में 'सोम' भर कर शीतलता पैदा की जा सकती है, गर्भाधान कारण औषधियों का यज्ञ में विशेष विधि से प्रयोग करके निःसन्तानों के सन्तान उत्पन्न करके स्त्री में क्षमता पैदा की जा सकती है। यज्ञ विज्ञान को न समझने से विपक्षी को ऊट पटांग आक्षेप करने का मौका मिला है। विपक्षी को उचित है कि इस प्रकार की हरकतें छोड़कर वह यज्ञ विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों को पढ़ कर अपना अज्ञान दूर करे।

जङ्गलों से वर्षा अधिक होती है, पर जब अनावृष्टि हो उस समय आकाश में सोम द्रव्य को यज्ञ की विधि से प्रविष्ट करा कर जब जहां चाहो उस प्रदेश में बादल बना कर जल वर्षा

कराना यह केवल भारतीय यज्ञविज्ञान की ही सामर्थ है। इन्दौर के प्रसिद्ध आर्य विद्वान श्री पं० वीरसेन जी वेदश्रमी कई स्थानों पर इसका परीक्षण दिखा चुके हैं जो समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुका है। अतः यज्ञ की उपयोगिता से इन्कार कराना घोर नरि दवता है।

यज्ञ में वेद मंत्र का प्रयोग कई दृष्टि कोण से होता है। यज्ञ कर्ता उन वेद मन्त्रों से प्रभु की प्रार्थना भी करता जाता है और अपनी यज्ञीय आहुति का लोक कल्याण आत्मकल्याण व अन्य जिस २ भावना से आहुति देता है उसे प्रभु की प्रार्थना से व्यक्त करता जाता है। वेदों का पठन पाठन भी इस से जारी रहता है। यज्ञ वैदिक कर्म है अतः वेद मंत्रों से उसका किया जाना उसके वैदिक स्वरूप को सुरक्षित रखने के लिए है। वेदों के मन्त्रों में थोड़े शब्दों में व्यापक एवं गम्भीर भाव व्यक्त होते हैं। अतः याज्ञिक उनके द्वारा अपना व्यापक भाव प्रगट करता है। वेद मन्त्रों में जो यज्ञ में प्रयुक्त होते हैं यज्ञ सम्बन्धी विज्ञान एवं उपदेश कट २ कर भरे हुए हैं। यह कोई भी व्यक्ति उनके अर्थों की व्याख्या से जान सकता है।

विपक्षी लिखता है कि चारों वेदों में एक भी ऐसा मंत्र नहीं है जिसमें हवन के लाभ वर्णित हों विपक्षी के वेद ज्ञान का अभाव प्रगट करता है। हम नमूने का एक मंत्र वेद में से उपस्थित करते हैं। इसे देखकर अपने झूठे दावे पर विपक्षी को शर्मिन्दा होना चाहिये।

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजाना थां द्यावा पृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्टयावताम्। व्यन्तु वयोक्तश्रंरिहाणा

मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टि-मावह । चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मेपाहि । (यजुर्वेद २।१६)

अर्थ—हम लोग (वसुभ्यः) अग्नि आदि ८ वसुओं से (त्वा) उस यज्ञ को तथा (रुद्रेभ्यः) एकादश रुद्रों से (त्वा) यज्ञ को और (आदित्येभ्यः) बारह महीनों से (त्वा) उस क्रिया समूह को उत्तम कर्मों से जाने और यज्ञ से (द्यावा पृथिवी सूर्य का प्रकाश और भूमि (संजानाथाम्) जो शिल्पविद्या उत्पन्न हो सके उनको सिद्ध करें और (मित्रा वरुणौ) जो सब जीवों के बाहर भीतर प्राण और उदान वायु हैं वे (वृष्टया) शुद्ध जल की वर्षा से (त्वा) जो संसार सूर्य के प्रकाश और भूमि में स्थित है उसकी (अवताम्) रक्षा करते हैं । (वयः) जैसे पक्षी अपने २ ठिकानों को रचते और (व्यन्तु) प्राप्त होते हैं (रिहाणाः) वेद मन्त्रों से पूजन करने वाले लोग (त्वा) यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, और जो यज्ञ में आहुति हवि दी जाती है वह (पृश्निः) अन्तरिक्ष में स्थित और (वशा) शोभित (भूत्वा) होकर (मरुताम्) पवनों के संग से (दिवं) सूर्य की किरणों को (गच्छ) प्राप्त होती है वह (ततः) वहां से (नः) हम लोगों के लिए (वृष्टिम्) वर्षा को (आवह) अच्छे प्रकार वर्षाती है । उस वर्षा का जल (पृषतीः) नाड़ी और नदियों को प्राप्त होता है । यह यज्ञ (चक्षुष्पा) नेत्रों की रक्षा करने वाला (असि) है, यह (मे) हमारे, यज्ञ करने वालोंके (चक्षुः) नेत्रों की रक्षा करता है, ज्योति को बढ़ाता है ।

यजुर्वेद के इस अध्याय में यज्ञ का वर्णन चल रहा है । अनेक मंत्रों में यज्ञ के लाभों का विषद वर्णन है । यज्ञ विज्ञान पर आर्य विद्वानों के अनेक बड़े ग्रन्थ विद्यमान हैं । उनको पाठक देख सकेंगे ।

यज्ञ में मन्त्रों को बोल कर अन्त में 'स्वाहा' शब्द बोलकर आहुति देने का विधान है। 'स्वाहा' शब्द बोलकर यज्ञ कर्ता अपनी भावना प्रगट करता है कि "मैं अपने मन की सत्यभावना से यह हवि यज्ञ में छोड़ता हूं" और यह कह कर वह हवि को यज्ञ वेदी में छोड़ देता है। अतः 'स्वाहा' मन्त्र के अन्त में उच्चारण करना, उपयोगी एवं आवश्यक होता है।

इस प्रकार हमने सिद्ध किया कि विपक्षी ने इस अध्याय में यज्ञ पर जो आक्षेप किये हैं वे सर्वथा मिथ्या हैं।

अध्याय १२

अपनी पुस्तक के बारहवें अध्याय में विपक्षी ऋषि दयानन्दजी महाराज पर अपनी महामूर्खता प्रकट करता हुआ कमीना आक्रमण करता है और अनेक प्रकार की गालियों का ऋषि के लिये प्रयोग करता है। हमने सिद्धान्तिक मतभेद रखने वाले समालोचक बहुत देखे हैं परन्तु इस विपक्षी जैसा धूर्तता करने वाला व्यक्ति नहीं देखा है जो स्वयं महा मूर्ख होते हुए अपने को महा पंडित ही नहीं साक्षात् परमेश्वर मानता है, जिसे लिखने तक की तमीज नहीं है परन्तु अपने को महान लेखक प्रगट करता है। ऐसे ओछी प्रकृति के विपक्षी के लिये हमको भी विवश होकर 'शठे प्रति शाठ्यं कुर्यात्' की नीति पर आचरण करना पड़ा है। हमारा विश्वास है कि सज्जनों के साथ सज्जनता एवं दुष्टों के साथ डन्डे का प्रयोग करना धर्मानुकूल है।

विपक्षी बहुत कुछ बकवास करता हुआ लिखता है कि सत्यार्थ-प्रकाश में ९ वें समुल्लास में स्वामी जी ने निम्न मंत्र का जो अर्थ किया है वह गलत है।

विद्यांचाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयथ्ंसह।
अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ (यजु०४०।१४)

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।

विपक्षी का आक्षेप है कि स्वामी जी ने अविद्या का अर्थ कर्मोपासना गलत किया है। हमारा उत्तर है कि स्वामी जी का अर्थ सर्वथा ठीक है, विपक्षी मूर्खतावश उसे समझने में असमर्थ है। स्वामी जी महाराज ने इसी प्रकरण में अविद्या शब्द के दो प्रकार के अर्थ किये हैं। एक तो यह कि किसी भी बात का विपरीत ज्ञान व विपरीत कर्म को अविद्या माना है। दूसरा अर्थ स्वामी जी का यह है कि—

"कर्म और उपासना अविद्या इसलिये है कि यह बाह्य और अन्तर क्रियाविशेष हैं, ज्ञान विशेष नहीं।"

इसका भाव स्पष्ट है कि लौकिक नाना प्रकार के कर्म और उनमें तन्मय रहने को (कर्म व उनकी उपासना को) अविद्या माना गया है। जो लोग संसार के ज्ञान विज्ञान में, नाना प्रकार के सांसारिक कार्यों में उनके नियम एवं रहस्यों को जानते हुए उनमें उन्मय रह कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं वे दुःखों से छूट जाते हैं। अर्थात् दुःखों से बच जाते हैं। यह लौकिक कर्म व उनमें तन्मय रहने की प्रवृत्ति (कर्म+उनकी उपासना) मनुष्य को सांसारिक सुख तो दे सकते हैं किन्तु बिना परमेश्वर के सत्य स्वरूप को समझे बिना ब्रह्म विद्या का ज्ञान प्राप्त किए मनुष्य 'अमृतत्व' अर्थात् मोक्ष को नहीं प्राप्त कर सकते हैं। क्यों कि—

"ऋते ज्ञानान्नि मुक्तिः" सांख्य सूत्र'

ऋत अर्थात् ब्रह्म ज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त होती है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेवविदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय ॥

(यजुर्वेद)

परमेश्वर को जानने के अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है। संसारिक ज्ञान व उसमें तन्मय रहना मोक्ष प्राप्ति

का साधन नहीं होता है। इसीलिए वेद मन्त्र में बताया है कि जो मनुष्य विद्या और अविद्या दोनों के यथार्थ स्वरूप को जान लेता है वह अविद्या अर्थात् कर्मों व उनकी उपासना से संसार में सुख पाता हुआ विद्या अर्थात् परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान से मोक्षको प्राप्त करता है। जीवन यापनके लिए सांसारिक ज्ञान आवश्यक है, उससे सुख पूर्वक जीवन बिताते हुए परमेश्वर के स्वरूप के ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करना चाहिये सांसारिक कार्यों में, व्यवहार में सब प्रकार की नीतियों से व्यवहार करना पड़ता है और नीतिज्ञ व्यक्ति ही संसार में सुख पा सकता है। नीति शास्त्र में क्या २ बात नहीं है। उसे ही अविद्या (कर्मोपासना) स्वामी जी ने बताया है। विपक्षी को तो शरारत करनी इष्ट है अतः वह घुमा फिरा कर सही अर्थ को उल्टा बताने की चेष्टा करता है। स्वामी जी का अविद्या का वेद मन्त्रार्थ भी ठीक है। दूसरे स्थान पर अविद्या की जो व्याख्या सत्यार्थ प्रकाश में की है वह भी उस स्थान पर ठीक है। कर्मोपासना का अर्थ है 'लौकिक कर्म उनका ज्ञान विज्ञान जानना और उपासना' अर्थात् उनमें तल्लीन रहना। आशा है विपक्षी का अज्ञान अब दूर हो जावेगा।

इसके आगे विपक्षी ने अमृत शब्द पर पाखण्ड फैलाया है। वह लिखता है—अमृत = (अ + मृत) जो मरा न हो अर्थात् चैतन्य आत्मा। यह अर्थ भी सही नहीं है। कोष में अमृत का अर्थ निम्न प्रकार है:—

अमृत (अ = नहीं, मृत = मरना) (पुं) अमी, सुधा, पीयूष, देवताओं का खाना अथवा रस जिसे पीने से अमर हो जाते हैं, आवे हयात्! (श्रीधर भाषा कोष) सारा संसार

जानता है कि अमृत उस तत्व को कहते हैं जिससे मनुष्य मरने से तर जाते हैं अर्थात् मरते नहीं हैं, अमर हो जाते हैं। वेद की परिभाषा में अमृत उसे कहते हैं जिसमें मनुष्य आवागमन, बार बार जन्म मरण से छूटकर मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। मोक्ष का अर्थ है कि परमेश्वर को प्राप्त करके जन्म मरण के बन्धन से छूटना। अतः वेद का अमृतत्व परमेश्वर है। विपक्षी को तो साधारण सा अर्थ भी करना नहीं आता है वह कैसा खुदा है। उसने इसी मन्त्र को ४ बार इस जरा से अध्याय में लिखा है पर उसे इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं दीखता है। चारों वेदों के बीस हजार से ऊपर मन्त्रों में विज्ञान के प्रकाशनार्थ यदि किसी मन्त्र का दुबारा प्रयोग हो गया है तो इसको पुनरुक्ति दीख पड़ती है। आगे विपक्षी झूंठा दावा करता है कि वेदों में ईश्वर का वर्णन नहीं है। हम उस सम्बन्ध में पहिले प्रमाण दे चुके हैं और सिद्ध कर चुके हैं कि वेदों में परमेश्वर का विस्तृत वर्णन करने वाले सैकड़ों मन्त्र विद्यमान हैं। जब विपक्षी के ज्ञान नेत्र फूटे हुए हैं तो वह वेदों को कैसे समझ सकता है।

इसके आगे विपक्षी एक दूसरा वेद मन्त्र और उद्धृत करता है और उसका अर्थ न समझकर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देता है।

पुरुषएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ (यजुर्वेद ३१-२)

इस पर ऋषि का वेद भाष्य यह है:—हे मनुष्यो! (यत्) जो (भूतम) उत्पन्न हुआ (च) और (यत्) जो (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) पृथ्वी आदि के सम्बन्ध से (अतिरोहति) अत्यन्त बढ़ता है उस (इदम्) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप (सर्वम्) समस्त जगत

को (अमृत्वस्य) अविनाशी मोक्ष सुख वा कारण का (ईशानः) अधिष्ठाता (पुरुषः) सत्य गुण कर्म स्वभावों से पूर्ण परमात्मा (एव) ही रचता है।

भावार्थ—हे मनुष्यो! जिस ईश्वर ने जब २सृष्टि हुई तब २ रची, उस समय धारण करता फिर विनाश करके रचेगा। जिस के आधार से सर्व वर्तमान हैं और बढ़ता है उसी सब के स्वामी परमात्मा की उपासना करो इससे भिन्न की नहीं।

सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में इसी मन्त्र का संक्षिप्त अर्थ करते हुए स्वामी जी ने लिखा है—

"हे मनुष्यो! जो सब में पूर्ण पुरुष और जो नाश रहित कारण और जीव का स्वामी, जो पृथिव्यादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है वही पुरुष इस सब भूत भविष्यति और वर्तमानस्थ जगत का बनाने वाला है।"

इस मन्त्र का अर्थ इतना स्पष्ट है कि लेश मात्र भी आक्षेप का अवकाश नहीं है। विपक्षी ने शरारत करने को मन्त्र की प्रथम पंक्ति का अर्थ लिखकर पाखन्ड फैलाया है दूसरी लाइन का अर्थ उसने जान बूझकर नहीं छुआ है जब कि अर्थ सम्पूर्ण मंत्र का एक साथ होता है। इस मन्त्र में 'यत् अन्नोनाति रोहति' पद का अर्थ है कि सम्पूर्ण जगत के पदार्थ जो अन्न से (वृद्धि करने वाले पोषक तत्वों से बढ़ते हैं। इस पर विपक्षी पाखन्ड रचता है कि जीवात्मा अन्न से बढ़ता है जीवात्मा तो नहीं बढ़ता है भौतिक शरीर अवश्य बढ़ता है अतः आक्षेपक की आपत्ति गलत है। मन्त्र में 'ईशानः' पद बताता है कि 'यत् भूतं यच्चभाव्यम्" जो जगत भूतकाल में हो चुका है और जोआगे होगा उस सब का परमेश्वर रचने वाला स्वामी है। इसमें ईश्वर का वर्णन है विपक्षी के जीवात्मा का नहीं है क्योंकि विपक्षी के जीवा-

त्मा भौतिक (वर्तमान एवं भूत कालिक) जगत का ईशानः स्वामी व रचने वाला नहीं है।

विपक्षी पूछता है कि मन्त्र में 'हे मनुष्यो' यह पद नहीं है न किसी पद का अर्थ है तो फिर अर्थ में यह क्यों लिखा गया है। यह मन्त्र मनुष्यों के उपदेश के लिए परमेश्वर ने कहा है अतः उपदेश परक अर्थ करते हुए 'हे मनुष्यो' भक्त के अर्थ के प्रारम्भ में लिखा जाना उपयुक्त ही है। यदि यह शब्द मन्त्र के भाष्य के बीच में होता तब विपक्षी का यह पूछना सङ्गत होता कि किस पद का अर्थ यह है। खेद है विपक्षी में साधारण सी बात भी समझने की योग्यता का अभाव है न मालूम उसके आंखों के अन्धे चेले उसे कैसे अपना गुरु घन्टाल मान बैठे हैं।

अध्याय १३

इस 'परमार्थ प्रकाश' पुस्तक का अन्तिम १३ वां अध्याय लिखते हुए विपक्षी ने अन्त में भी अपनी शरारत दिखाई है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में 'स्वमन्तव्यामन्तव्य' में 'न्यायकारी' किसे कहते हैं यह लिखते हुए कहा है:—

"जो सदा वचार कर असत्य को छोड़ सत्य को ग्रहण करे, अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सबका सुख चाहे सो "न्यायकारी" है, उसको मैं भी ठीक मानता हूं।"

इसमें 'अपने आत्मा के समान सबका सुख चाहे' इस वाक्य से स्पष्ट है कि यह व्याख्या मनुष्यों के लिए है। ईश्वर के सम्बन्ध में यह व्याख्या नहीं है। किन्तु विपक्षी जाल रचता है और इसे ईश्वर परक बताकर आक्षेप करता है कि ईश्वर अन्यायकारियों को क्यों पैदा करता है, उनका विनाश क्यों नहीं करता है। क्योंकि संसारमें अन्याय, अत्याचार फैल रहे हैं और ईश्वर उनको दूर नहीं करता है, अतः ईश्वर न्यायकारी नहीं है। वह अन्यायी है। इत्यादि।

हम पूर्व अध्यायों में बता चुके हैं कि जीव कर्म करने में पूर्णतया स्वतन्त्र है। अपनी स्वतन्त्रता से वे चाहे जैसा अपना

आचरण बनावे, कार्य करे, अपनी उन्नति करे या अपना पतन करे उसको अधिकार है। यदि जीव दूसरे किसी शक्ति के प्रभाव में होकर उसी की इच्छानुसार कर्म करते होते तो कर्तव्य का उत्तरदायित्व उन पर न होकर उस कर्म कराने वाली शक्ति पर होता। ऐसी दशा में जीव की स्वाभाविक स्वतन्त्रता का विनाश हो जाता और वह केवल एक कठपुतली मात्र बन जाता। किन्तु ऐसा नहीं है। तो जब जीव अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग अपने कर्मों में करते हैं तो फिर फल भोगने में उनका परतन्त्र होना स्वाभाविक है, अन्यथा अपने अशुभ कर्मों का दण्ड भोगने को कोई भी तैयार न होता। ईश्वर उनको उनके कर्मों का यथावत् फल भोग कराता है। इसीलिए वह न्यायकारी है जो न्याय करता है वह न्यायकारी होता है। इससे ईश्वर के ऊपर कोई आक्षेप नहीं आता है। संसार में जो भी अच्छी बातें हैं अथवा खराब बातें दिखाई देती हैं यह सब जीवों की स्वतन्त्रता के कारण हैं, और जीवों के सुख दुःख दीखते हैं वे उनके कृत कर्मों के फल भोग के कारण हैं।

इस प्रकार 'परमार्थ प्रकाश' नाम की पुस्तक के सम्पूर्ण आक्षेपों का विधिवत् उत्तर दिया जा चुका है। विपक्षी का कोईभी आक्षेप सार पूर्ण नहीं दिखाई दिया। सर्वत्र अहम्मन्यता, पाखण्ड–धोखादेही, जालसाजी, ऋषि दयानन्द एवं आर्य समाजियों को गालियां ही विपक्षी की पुस्तक में भरी पड़ी हैं और यही विपक्षी की योग्यता की विशेषता रही है।

दूसरा-खण्ड

अध्याय १४

विपक्षी ने एक दूसरी पुस्तक "मुनि समाज और आर्य समाज" नाम की लिखी है । इसका कागज रफ़ है, पृष्ठ संख्या ६० है तथा मूल्य दो रुपया रखा गया है ।

इस पुस्तक में लगभग सारी ही वही बातें हैं । जो प्रथम पुस्तक परमार्थ प्रकाश' में विपक्षी लिख चुका है । हम विस्तार से विपक्षी के समस्त आक्षेपों का मुँह तोड़ उत्तर पहिले ही दे चुके हैं, अतः उनका पिष्ट पेषण करना उचित नहीं समझते हैं । दो एक नये ढङ्ग के आक्षेप जों विपक्षी ने किये हैं तथा दो चार जो नये प्रमाण अपने पक्ष में दिए हैं उनका हम उत्तर इसमें देंगे ।

इस पुस्तक के पृष्ठ ४ पर विपक्षी ने लिखा है "जीव और प्रकृति को हम भी अनादि मानते हैं ।" शायद विपक्षी प्रकृति का अर्थ नहीं समझता है प्रकृति का लक्षण है 'सतरज तमसाम्यावस्था प्रकृति' । जगत बनने से पूर्व जगत का उपादान कारण जब परमाणु रूप से अवस्थित रहता है तो उस सत रज तम की सम अवस्था का नाम प्रकृति है । प्रकृति में विकार उत्पन्न होने से द्विअणु त्रिसरेणु आदि बनते हैं, और फिर नाना रूपों में परिवर्तित होकर उससे कार्य रूप जगत की रचना होती है । जब विपक्षी जगत के उपादान कारण प्रकृति को नित्य स्वीकार करता है तो स्वभावतः उसे उससे बने हुए कार्य रूप जगत को उत्पन्न होकर नाशवान मानना पड़ेगा । आदि कारण अनादि होता है, कार्य

उत्पन्न होकर नाशवान होता है। जब ऐसा है तो विपक्षी का शोर मचाना कि सृष्टि अनादि है कभी किसी ने नहीं बनाई है, सर्वथा बेकार है। प्रत्येक कार्य का जहां उपादान कारण होता है वहाँ उसका कर्ता भी होता है। अतः सिद्ध हुआ कि विपक्षी के प्रकृति का अनादि मान लेने से जगत कार्य है और उसका कोई कर्ता परमेश्वर अवश्य है।

पृ० ८ पर विपक्षी ने लिखा है कि जब एक वृद्ध भूमण्डल के नष्ट होने का समय आता है तो एक युवा भूमण्डल उसके निकट आ जाता है वृद्ध मण्डल की शक्ति क्षीण हो जाती है। उसके निवासी नवीन भूमण्डल पर सवार हो जाते हैं इससे सिद्ध है कि विपक्षी पूरा शेखचिल्ली है। वह बैठा बैठा मूर्खतापूर्ण गप्पें सोचा करता है। हम पूछते हैं, कि शेखचिल्ली बतावे कि युवा भूमण्डल वृद्ध भूमण्डल है टकरा क्यौं नहीं जाता है ? वह विपक्षी की खोपड़ी पर क्यों नहीं गिर पड़ता है। क्या शेखचिल्ली उसे अपनी खोपड़ी के ऊपर रोके रहता है जो इस वृद्ध भूमण्डल के गधे कुत्ते बिल्ली, चूहे शेखचिल्ली का परिवार कूद २ कर उस पर चढ़ते रहते हैं ? शेखचिल्ली बतावे कि उसके कल्पित युवा भूमण्डल को कौन सी शक्ति कहां से लाकर कैसे निराधार आकाश में धारण किये रहती है ? नया भूमण्डल शेखचिल्ली के ज्ञान-शक्ति प्रेस छापे खाने में बनता है या विपक्षी के कोट की जेब में या उसकी खोपड़ी में उसकी रचना होती रहती है।

इस प्रकार के मूर्खों ने गल्पें गढ़ २ कर हमारे देश में पाखण्ड फैला रखा है। आश्चर्य है कि बुद्धि हीन लोग कैसे इन पाखण्डियों की महा मूर्खता पूर्ण बातों में फँसते रहते हैं।

पृ० ११ पर विपक्षी गीता के 'ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठिति'। अर्थ—हे अर्जुन ! ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में निवास करता है।

इस पर विपक्षी यह सिद्ध करना चाहता है कि मानव का जीवात्मा ही शरीर में रहने से हृदय में रहता है। अतः जीवात्मा ही ईश्वर है।

विपक्षी भूल जाता है कि ईश्वर सर्व व्यापक होने से प्रत्येक प्राणी के अन्दर भी विद्यमान है। गीताकार बताता है कि ईश्वर की प्रतीत जीवात्मा को वाह्य पदार्थों में नहीं होती है। उसके लिए अन्तर्मुखी प्रवृत्ति करके विद्वान जन समाधिस्थ हो कर अपने हृदय प्रदेश में परमात्मा का अनुभव करते हैं। इसीलिये गीता का भाव है कि मनुष्य तू वाह्य पदार्थों में ईश्वर को क्यों ढूँढ़ता फिरता है। वह तो सर्व व्यापक होने से तेरे अन्तःकरण में तेरे हृदय प्रदेश में विद्यमान है। वहीं उसको तलाश कर। वह वहीं तुझे प्राप्त होगा।

गीता के सीधे सादे भाव को भी जो नहीं समझ सकता है वह विपक्षी कैसा पढ़ा लिखा है। जिसमें इतनी भी अक्ल नहीं है वह ईश्वर अपने को कैसे मानता है। क्या मुनि समाज के सारे ही ढोंगी ईश्वर अक्ल के दिवालिया होते हैं ?

गोस्वामी जी ने भी ठीक ही कहा है सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।' सिद्ध लोग परमेश्वर को अपने अन्दर अपने अन्तःकरण में ही देखते हैं। विपक्षी में यदि उसे समझने की योग्यता का अभाव है तो इसमें गोस्वामी जी का कोई दोष नहीं है।

जीवात्मा सदैव शरीर के आधीन रहता है। उसे किसी न किसी शरीर के अन्दर अभिमानी रूप में रहना ही पड़ता है। अतः वह अल्पज्ञ, एक देशीय, अल्प शक्तिवान एवं पराधीन होता है। वह कभी भी सर्वज्ञ-सर्वव्यापक-सर्वशक्तिमान प्रजापति परमेश्वर के तुल्य नहीं हो सकता है। जीवात्मा चींटी के शरीर को त्याग कर विशालकाय हाथी के शरीर में प्रवेश करने पर भी एक देशीय ही रहता है। वह कभी भी अनन्त नहीं बन सकता है। अतः वह अनन्त विश्वव्यापी परमेश्वर नहीं बन सकता है। स्वाध्याय एवं सत्संग से जीव का ज्ञान कुछ बढ़ जाता है किन्तु वह सर्वज्ञ सर्व देशीय नहीं हो सकता है। यदि जीवात्मा जैसे कर्म करने में स्वतन्त्र है वैसे ही फल भोगने में स्वतन्त्र होता तो वह नीचे की पशु आदि एवं नीच जीर्ण रोगी कुलों में क्यों जन्म लेता।

स्पष्ट है कि वह परतन्त्र है और ईश्वर की व्यवस्था से निज कर्मानुसार दण्ड व सुख भुगतता है। यदि विपक्षी ईश्वर है तो वह अरबों रुपयों की सम्पत्ति का मालिक क्यों नहीं बन जाता है, काहे को साठ फीसदी नफा पर किताबें बेचता फिरता है. विज्ञापन निकालता है। स्पष्ट है कि कामी क्रोधी-लोभी-मोही विपक्षी में जब सद्गुणों का अभाव है तो वह ईश्वर तो क्या कोई भला आदमी भी नहीं बन सकता है। यदि वह अपने को स्त्री या गधा बताने लगे तो कोई भी उसे औरत या गधा नहीं मानेगा। इसी प्रकार जब वह अपने दिमागी पागलपन के कारण ईश्वर बताने लगे तो कोई बुद्धिमान उसे ईश्वर नहीं मानेगा। हां ! उसकी ४०% पर किताबें बेचने वाले चेले चांटे उसे खुदा मानने लगे तो बात दूसरी है।

यह ईश्वरीय व्यवस्था है कि प्रत्येक बीज अपने वृक्ष के सम्पूर्ण गुणों को धारण करता है, अतः वह उसी प्रकार के वृक्ष को उत्पन्न करता है। आम के बीज से इमली तथा इमली से नीम उत्पन्न नहीं होता है। जो सुन्दर नियम एवं व्यवस्थायें परमेश्वर ने जगत में बनादी है वह सत्य है। इसीलिये तो मनुष्य होने पर विपक्षी के माता से विपक्षी मनुष्य रूप में ही पैदा हुआ है। यदि कोई सृष्टि का अटल नियम इस उत्पत्ति क्रम में काम न करता होता तो सम्भव है विपक्षी किसी गधा या सूकर की आकृति का पैदा हुआ होता, और उस दशा में जब वह अपने को ईश्वर बताता तो उसके चेलों को उस पर विश्वास करने का जबर्दस्त सबूत होता क्योंकि वह कहता कि मैंने प्रकृति के क्रम को तोड़ा है अतः यह मेरे ईश्वर होने का प्रमाण है। किन्तु ईश्वरीय क्रम को न तो विपक्षी तोड़ सकता है न कोई अन्य। ईश्वर स्वयं अपनी निश्चित मर्यादा के अनुसार विश्व का संचालन कर रहा है। नियमों को तोड़ना कोई उत्तम बात नहीं होती है। यदि विपक्षी में ईश्वरत्व का दम है तो वह अपनी दोनों आंखें फोड़ कर पुनः नई पैदा करके दिखाकर अपने ईश्वरपने का प्रमाण दे।

अध्याय १५

विपक्षी ईश्वर भक्ति को ईश्वर का गुलाम होना बताता है। वह स्वाधीन होने के नाम पर लोगों को नास्तिक बनाने का प्रयास करता है। हमने ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना व उपासना की उपयोगिता अध्याय १ में प्रतिपादित की है। उससे पाठक यह समझ सकें कि परमेश्वर की उपासना कितनी आवश्यक है, उससे कितना लाभ जीव को होता है। पर ये अकड़ू मियां उसे पसन्द नहीं करते हैं। यह शरीर रूप जेलखाने में बन्द है, दिन रात रोते और कष्ट भोगते हैं। ६% पर किताबों का व्यापार करते है। पर अपने से महान, श्रेष्ठ गुणों के भण्डार परमेश्वर को गालियां देते हैं जिसकी कैद में यह स्वकर्मों के अनुसार दण्ड भोग रहे हैं। जीव यदि ईश्वर की उपासना करेगा तो उसी का हित होगा नहीं करेगा तो वह उस लाभ से वंचित रहेगा। संसार में कार्य व पुरुषार्थ करने में प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है। विपक्षी भी ४२० का व्योपार करने में स्वतन्त्र है। आर्य समाजी भी संसार का कल्याण करने में पूर्ण स्वतन्त्र हैं। ईश्वर की ओर से किसी को भी रोक नहीं है। विपक्षी डरे नहीं; वह वेखटके धोखाधड़ी का व्योपार चालू रखे। जब उसके पूर्व जन्म के थोड़े से सुकर्मों का अन्त होगा, उसके वर्तमान जन्म के लोगों को नास्तिक बनाने रूप पापों का घड़ा भर जावेगा तो ईश्वरीय नियमानुसार उसकी मृत्यु होगी और तब मृत्यु के समय उसे यह ज्ञात होगा कि उसकी इच्छा न होते हुए भी कोई महान शक्ति बरबस उसे इस शरीर में से खींच कर बाहर ले जाती है। तब उसे ईश्वर की सत्ता

का भान होगा और वह पछताता रोता हुआ इस संसार से आगामी जीवन के लिये पराधीन हुआ विदा होगा।

ईश्वर विश्वासी आस्तिक बनने का कदापि यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य आलसी प्रमादी एवं पुरुषार्थ हीन बन जावे। उसे संसार में उन्नति अवनति स्वयं अपनी करनी है। मानव खूब पुरुषार्थ करे, इहलौकिक उन्नति करे और उस उन्नति को करते हुए इस बात का ध्यान रखे कि उसे दूसरे जीवन में जाना है। अतः उसके जीवन के कर्म सदाचार की उच्च मर्यादा के अनुकूल रहे ताकि उसका अगला जीवन भी विगत कर्मों के आधार पर श्रेष्ठ बन सके। यह सब बातें वर्तमान जीवन को श्रेष्ठ बनाना व आगामी जीवन का ध्यान रखना आस्तिक लोगों के विचार हैं। नास्तिक तो अपने को खुदा मानते हैं, उनके लिए धर्म अधर्म सही गलत कुछ भी नहीं होता है जैसा कि विपक्षी सोचता है। विपक्षी लिखता है कि देव, भाग्य और विधाता की सृष्टि कायरों ने की है दूसरे स्थान पर लिखता है पुरुषार्थी अपने भाग्य को बनाता है। यह दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं। जब पुरुषार्थी भाग्य का निर्माता है तो यह कहना कि कायरों ने भाग्य की सृष्टि की है, अपनी ही बात को काटना नहीं तो क्या है। क्या विपक्षी की दृष्टि में पुरुषार्थी का अर्थ कायर है ? कर्म की तीन अवस्थायें होती हैं। क्रियमाण जब कर्म किया जाता है तो उस समय उसकी क्रियमाण अवस्था होती है। कर्म समाप्त हो जाने पर उसकी संचित अवस्था होती है। और जब उन कर्मों का फल भोग का समय आता है तो उसे कर्म की तीसरी 'प्रारब्ध' या 'भाग्य' अवस्था कहते हैं कर्म का फल अवश्य मिलता है अतः बुद्धिमान लोग भाग्य पर विश्वास करते हैं। विपक्षी नास्तिक होने से चाहे उसे न मानता हो। तो उसके मानने न मानने से सचाई मिट नहीं सकती है।

अध्याय १६

इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में कोई सिद्धाँत की बात नहीं है। विपक्षी ने अपने को ब्रह्म बताया है और यह घोषणा की है कि वह किसी भी ग्रन्थ को मानने वाला नहीं है, चाहे वह ग्रन्थ वेद पुराण, कुरान बाईबिल आदि कोई भी क्यों न हो। विपक्षी की इच्छा को कौन रोक सकता है, वह जो उसे ठीक लगे उसे माने। जिस व्यक्ति की कोई आचार संहिता न हो, जिसके विचारों का आधार कोई शास्त्र न हो, जो विश्व में अपने को ही सर्वोपरि विद्वान, साक्षात् परमात्मा मानता हो, अपने से अधिक किसी को भी न मानता हो ऐसे घमण्डी व्यक्ति के साथ शास्त्रार्थ का तो प्रश्न नहीं उठता है। हाँ ! सामने पड़ने पर उसके ईश्वरत्व का गर्व मर्दन तर्क द्वारा अवश्य किया जा सकता है और ऐसे किया जाना चाहिए ताकि वह जनता को कुमार्ग गामी न बना सके।

———

अध्याय १७

अपनी पुस्तक के चौथे अध्याय में विपक्षी लिखता है 'कि मुनियों की सन्तान होने से वह व उसके साथी मुनि हैं और उनका समाज मुनि समाज है।' यह भी विलक्षण तर्क है। मुनि कोई घोड़ा-भैंस-हिरन-हाथी या मनुष्यों की तरह कोई जाति नहीं है जो कि उनकी सन्तान होने से घोड़ा-भस-हिरन-हाथी या मनुष्य नाम वाली हो सके। मुनि या ऋषि तो योग्यता के अनुसार पदवी थी जो कि महान तपस्वी, काम क्रोध लोभ मोह से परे नित्य ईश्वर के ध्यान में तन्मय रहने वाले वीतराग महापुरुषों को दी जाती थी। प्रिंसिपल-कलक्टर, मिनिस्टर पदवी हैं जो कि उस योग्यता एवं पद को प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को मिलती हैं। यदि उनकी सन्तान यह कहने लगे कि उसे भी बाप के पद के कारण प्रिंसिपल-कलक्टर-मिनिस्टर के नाम से पुकारा जावे, चाहे वह सन्तान निरक्षर भट्टाचार्य क्यों न हो तो इस बात को कोई नहीं मानेगा। इसी प्रकार ऋषि एवं मुनिपद भी उस उच्चकोटि के वीतराग व्यक्तियों की उपाधियाँ थीं। मुनियों की सन्तान यदि गधापन के कार्य करें। चालीस व साठ फीसदी कमीशन पर झूठी किताबें छाप २ कर जनता को बेचने का ४२० का धन्धा करे तो वह कलंकी औलाद अपने पूज्य पुरुषों के नाम को कलंक लगाने वाली होगी। इसी प्रकार विपक्षी ने जनता को गुमराह करने, अपने को परमात्मा बताने, महापुरुषों, ऋषि मुनियों के नाम को कलंकित करने वालों की एक पल्टन बना कर उनको मुनि और उस पल्टन को मुनि समाज बताने का जो पाखण्ड फैलाया है

उससे समझदार लोग यह अनुभव करते हैं कि यह वैदिक ऋषि मुनियों के नाम की नक़ल करके जनता को लूटने खाने का एक धन्धा मात्र है। दुनियां के ढोंग में फंसे लोग यदि योगी या योगीश्वर अपने को बताने लगेंगे तो भारतीय योग विज्ञान का निरादर होगा। लोग समझेंगे कि भारतीय योगी ऐसे ही मूर्ख व प्रपंची होते होंगे। इससे भारत की प्राचीन सभ्यता कलंकित होगी। गीता में भगवान कृष्ण को योगीश्वर कहा है जो उस युग के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे और जिन्हें संसार आज भी महानतम व्यक्ति मानता है। और एक हमारा यह गोरखपुरिया विपक्षी है जिसे लेख लिखने तक की भी तमीज नहीं है, और अपने को साक्षात् भगवान और योगीश्वर बताता है। इसे ही कहते हैं कि "कहाँ राजा नल और कहां नलवा धोबी"

ऋषि मुनि मनुष्य थे अतः उनकी सन्तान (वंशज) होने से विपक्षी भी मनुष्य अपने को कह सकता है, उसे पशु कोई नहीं कहेगा। जिस २ ऋषि के आश्रम पर उनके शिष्य शिक्षा प्राप्त करते थे, वे अपने नाम के साथ उस ऋषि की स्मृति को क़ायम रखने के लिये ऋषि का नाम लिखा करते थे। जो कि बाद को गोत्र कहलाने लगे और वंश परम्परा से अबतक चले आरहे हैं। यही गोत्र शब्द का रहस्य है।

इसके पश्चात् विपक्षी ने तैत्तीसयोपनिषद अनुवाक ११।२ का थोड़ा सा भाग लिख कर यह बताया है कि वह वेद वाक्य है और ईश्वर की ओर से कहा हुआ है।

वह वाक्य यह है —

'यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।"

इसका पूरा भाग निम्न प्रकार है।

मातृदेवोभव ॥ पितृदेवोभव आचार्य देवोभव ॥ अतिथि देवोभव ॥ यान्यनवद्यानि कर्माणि ॥ तानि सेवितव्यानि ॥ नो इतराणि ॥

यान्यस्माकꣳसुचरितानि ॥ तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ॥२॥

अर्थात्—माता को देवतावत् पूज्य समझो। पिता को देव समान समझना, आचार्य को पूज्य समझो। अतिथि को देव तुल्य समझना। जितने दोष रहित उत्तम कर्म हैं उन्हीं को तुम सेवन करना, पाप कर्म तुम कभी न करना। जितने हमारे शुभ आचरण हैं. वे ही तुम को धारण करने योग्य हैं। हमारे दोषों का अनुकरण कभी न करना चाहिए।

शिष्य जब विद्या अध्ययन करके गुरु के पास से बिदा होता है तो गुरु दीक्षान्त अवसर पर उसे उक्त प्रकार से उपदेश देता है। यह बहुत सुन्दर उपदेश है। इसमें कोई भी आपत्ति का स्थल नहीं है। पर विपक्षी ने अपने स्वभाव के अनुसार यहां भी भारी शरारत की है। उसने इस उपनिषद वाक्य को वेद का वाक्य बता दिया है और गुरु के उपदेश को ईश्वर का उपदेश बताकर लिख मारा है कि इस प्रमाण के अनुसार वेद में खराब बातें भी हो सकती हैं। इस प्रकार छल कपट करना विपक्षी के लिये घोर लज्जा की बात है। ऐसा छली कपटी आदमी अपने को योगीश्वर बताकर हिन्दू जाति को कलंकित करता है। अथवा यह मानना होगा कि विपक्षी ने वेद व उपनिषद आदि की शक्ल भी नहीं देखी है उसने पुस्तक लिखने में कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानवती ने कुनबा जोड़ा। वाली कहावत चरितार्थ की है। इसके बाद विपक्षी वेद का निम्न मंत्र पेश करता है।

शंनो मित्रः शंवरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णु रुरुक्रमः॥ (यजु ३६।९)

इस मंत्र के द्वारा मनुष्य ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि (शंनोमित्रः) मित्रगण हमारे लिये सुखकारी (शंनोवरुणः) तुला के तुल्य शान्ति

कारक मनुष्य हमारे लिये सुखदायक हों। (शन्नो भवत्वर्य्यमा) अर्यमा पदार्थों के स्वामी धनवान लोग हमारे लिये कल्याणकारी होवे (शन्न इन्द्रोब्रहस्पतिः) परम ऐश्वर्यवान वेद के विद्वान हमारे लिये कल्याणकारी हों (शन्नो विष्णु रुरुक्रमः) संसार की रचना करने वाले परमेश्वर आप हमारे लिये सुखदायी होवें।

यह मंत्र भक्त की परमेश्वर से आत्म कल्याण की प्रार्थना के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यह वेद की वर्णन शैली की विशेषता है। वेद ने मनुष्यों को आत्म कल्याण के लिये प्रार्थना कैसे करनी चाहिये इसका मार्ग दर्शन किया और उस प्रकार के मंत्र दिये हैं। इससे वेद के गौरव था उनके ईश्वरीय ज्ञान होने पर कोई आपत्ति नहीं आती है इसी प्रकार विपक्षी ने तनूपासि अग्ने (यजु ३।१७) तथा 'सुमित्रिया न आपः (यजु ३५।१२ के दो मंत्र और उद्धृत किये हैं जिन्हे वह परमार्थ प्रकाश में पहिले पेश कर चुका है हम उनका उत्तर पहिले दे चुके हैं। (देखो अध्याय ९)

इससे आगे विपक्षी ने अपने को 'ब्रह्म' सिद्ध करने के लिये वही सारे प्रमाण पुनः लिख मारे हैं जिन्हें वह कई बार पहिले लिख चुका है और जिनका उत्तर विस्तार से गत अध्यायों में दिया जा चुका है।

विपक्षी ने अपनी पुस्तक में पृ. ७३ द पर ब्रहदारण्यक उपनिषद ४।५। १३ पता लिखकर मानुषस्तेजो.... सर्वम् की एक श्रुति उपस्थित की है। किन्तु उक्त उपनिषद में उक्त स्थता पर यह श्रुति नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि कहीं से सुन सुना कर इसे विपक्षी ने लिख मारा है जब विपक्षी इस प्रमाण को सही पते के साथ उपस्थित करेगा तब इस पर विचार किया जावेगा। इसके पश्चात् आगे अपना पाखण्ड फैलाता हुआ अपने कल्पित सिद्धान्त के समर्थन में मनुष्य को ब्रह्म सिद्ध करने के लिये विपक्षी वेद के निम्न मंत्र पेश करता है।

(क) एषोह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वोह जातः स उगर्भेऽअन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥
(यजु० ३२-४)

(ख) प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्ताऽजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥
(यजु ३१-१६)

इन दो वेद मन्त्रों पर विपक्षी ने बहुत उछल कूद मचाई है। दूसरे मंत्र की केवल पहिली पंक्ति ही उसने जान बूझकर उद्घृत की है क्योंकि पूरा मंत्र लिखने पर उसका पाखण्ड समाप्त हो जाता है। विपक्षीने तोड़ मरोड़कर इनसे यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि आत्मा ही ब्रह्म है वही जन्म लेता है, गर्भ में जाता है। आगे भी जन्म लेगा अतः बार २ जन्म लेने वाला होने से आत्मा ही परमात्मा है। उसी आत्मा का वर्णन वेद में किया गया है।

हम पीछे देख चुके हैं कि विपक्षी को शरारत करना तो आता है पर उस में वेद को समझने की योग्यता नहीं है। वह ४२० कर के जनता में अपने को ईश्वर सिद्ध करने के लिये वेद, उपनिषद आदि के मंत्रों के टुकड़ों को लेकर उनके उल्टे सीधे अर्थ करने में लगा है। हम इन दोनों मंत्रों का सत्यार्थ नीचे देते हैं। दूसरे मंत्र का अर्थ यह है—(अजायमानः) वह परमेश्वर कभी जन्म नहीं लेता है (प्रजापतिः) वह परमेश्वर प्रजाओं का स्वामी है। (तस्मिन्ह विश्वाभुवनानि तस्थुः) इस परमेश्वर में सारे ही प्रसिद्ध लोक लोकान्तर स्थिति हैं या वह सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों को धारण कर रहा है। (तस्य योनिं) उस परमेश्वर के अनन्त विश्व में व्याप्त स्वरूप को (परिपश्यन्ति धीराः) धैर्यवान योगीजन सर्व स्थानों वा दिशाओं में देखते वा अनुभव करते हैं। (अन्तः गर्भे चरति) वह परमेश्वर जीवात्माओं के अन्तःकरण के गर्भ वा मध्य में विचरता है वा विद्यमान रहता है। (बहुधा विजायते) वही परमेश्वर अनन्त विश्व की रचना करके अपने अस्तित्व अनेक रूपों में प्रगट करता है।

पहिले मंत्र का अर्थ होगा।

(एषो हदेवः) यह परमेश्वर (तिष्ठति सर्वतो मुखः) सब ओर विश्व में मुखवाला होकर स्थिति है वा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त होने से सर्वव्यापक रूप से नित्य स्थित है। (सउ अन्तः गर्भे) वही परमेश्वर जीवों के अन्तःकरण के मध्य में स्थिति है (पूर्वोह जातः प्रदिशो अनु-सर्वा) वही परमेश्वर सम्पूर्ण दिशा विदिशाओं में पूर्व कल्प में भी प्रगट हुआ था (स एव जातः) वही परमेश्वर वर्तमान कल्प में भी अपनी अनन्त रचना द्वारा कर्ता रूप में प्रगट हुआ (स जनिष्यमाणः) वही परमेश्वर आगामी कल्पों में भी इसी प्रकार अपने अस्तित्व को प्रकट करेगा (प्रत्यङ्ग) वह परमेश्वर प्रत्येक पदार्थ में व्याप्त है। (जनाः) हे मनुष्यो ! तुम उस पर परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करो।

वेद के इन दोनों मन्त्रों में कितनी सुन्दरता के साथ परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन किया गया है। इन्हीं दोनों मन्त्रों को सनातनी अवतारवाद के समर्थन में अपनी अज्ञानता से पेश करते हैं और इन्हीं को विपक्षी अपना ढोंग सिद्ध करने को लिख बैठा है। जो परमेश्वर (अजाय मान) जन्म न लेने वाला है जो ईश्वर सम्पूर्ण लोकों को धारण कर रहा है (प्रदिशो अनु सर्वाः) सम्पूर्ण दिशा विदिशाओं में एक रस व्याप्त है वह परमेश्वर जीवात्मा कैसे बताया जा सकता है। विपक्षी ने जान बूझकर दूसरे मंत्र की दूसरी लाइन नहीं लिखी वरना उसका कान पकड़ा जाता। इसी प्रकार विपक्षी ने 'पुरुषएवेद' (यजु ३१-२) का मन्त्र पुनः पेश किया है। जिसका उत्तर हम अध्याय १२ में लिख चुके हैं। इसके आगे विपक्षी निम्न मन्त्र पेश करता है :--

तदेजाति तन्नैजाततद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्यवाह्यतः ॥ (यजु ४०-५)

(तद्) वह परमात्मा सर्वस्थ (अन्तः अस्य) जीवों के अन्तः करण में तथा सम्पूर्ण जगत के अन्दर विद्यमान रहता है, (तदु सर्वस्यास्य-वाह्यतः) वह परमात्मा सम्पूर्णजीवो के अन्तःकरण के बाहर तथा बाह्य

जगत में भी व्याप्त है। मूर्खों की दृष्टि में (तद एजति) वह परमात्मा हिलना-चलायमान होता है अथवा आता जाता है किन्तु बुद्धिमान लोग जानते हैं कि समस्त विश्व में अपने स्वरूप से एक रस व्याप्त होने से वह (तत् न एजति) परमेश्वर चलायमान नहीं होता है। इसी प्रकार मूर्ख-अविद्वान-पापी लोगों से (तद्दूरे) वह परमात्मा बहुत दूर है एवं विद्वानों के (तद्वन्ति के) वह अति निकट है।

सर्व व्यापक परमात्मा के लिए उठना, बैठना आदि कहना मूर्खों का कार्य हो सकता है। कोई बुद्धिमान ऐसी बात नहीं कह सकता है। सर्व व्यापक घट-घट वासी अनन्त विश्व के आधार परब्रह्म परमेश्वरों के विषय में जो मूढ़ जन—

ब्रह्मतं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्मवेद।

यह सोचते हैं कि वह महान् ब्रह्म हमारी आत्मा के अन्दर व्याप्त नहीं है हमसे प्रथक है, दूर है, वह लोग ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते हैं।

एक बार भृगु ने अपने पिता वरुण से प्रश्न किया कि मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिए। तो उसके पिता ने कहा—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभि संविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति॥
(तैत्तरी उप० भृगु वल्ली १)

अर्थ—निश्चय ही यह सब प्रत्यक्ष दीखने वाले प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं; उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं और अन्त में इस लोक से प्रयाण करते हुए जिसमें प्रवेश करते हैं, उसको तत्व से जानने की इच्छा कर। वही ब्रह्म है।

और इस सर्व जगत के उत्पन्न कर्ता, पालन कर्ता ब्रह्म से ही विश्व का पोषण, स्थिति एवं प्रलय होती है।

एतस्माद्वात्मनआकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथ्वी। पृथिव्या। ओषधयः""।

उसी महानात्मा परब्रह्म परमेश्वर से आकाश। आकाश से वायु। वायु से अग्नि। अग्नि से जल। जल से पृथ्वी। पृथ्वी से अन्न, औषधि आदि क्रम से उत्पन्न होती हैं। यह सब सर्व व्यापक परमेश्वर का वर्णन वेदादि शास्त्रों में किया गया है। विपक्षी तो शरारत पर कमर कस कर उतरा है। वह हर बात को उल्टे रूप में पेश करता है। तैत्तिरीयोपनिषद में भ्रगुवल्ली में भ्रगु को जब ब्रह्म के जानने की जिज्ञासा पैदा हुई तो पहिले उसने अन्न को ब्रह्म समझा फिर उसे त्याग दिया। फिर उसने प्राणों को ब्रह्म समझा, उसे भी त्याग दिया। फिर उसने मन को ही ब्रह्म माना, बाद को उसे भी त्याग दिया। फिर उसने विज्ञान को ब्रह्म समझा, किन्तु उस विचार को भी त्याग दिया। इसी प्रकार वह कई चीजों को ब्रह्म मानता, उसको विचार करके छोड़ता चला गया आगे जाकर वह ब्रह्म के मुख्य स्वरूप को समझ सका। इसका विस्तृत वर्णन उक्त उपनिषद में दिया है। विपक्षी शरारत करने के लिये उसी प्रकरण में से बीच में से भ्रगु की उस शङ्कित एवं खोज बीन के दौरान की अवस्था का प्रमाण 'मनसोह्येव खल्विमानि भूतानि ....' अनुवाद ४ को लिखने बैठ गया जो कि उसकी निकृष्ट मनोवृत्ति का परिचायक है।

इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद अध्याय ७ खन्ड ३ में नारद सनत्कुमार के सम्वाद का वर्णन दिया गया है। नारद जी ब्रह्म की जिज्ञासा प्रगट करते हैं और सनत्कुमार जी उनको उपदेश देते हैं।—नारद जी वाणी को ब्रह्म मान बैठते हैं फिर उस विचार को त्याग देते हैं। नारद जी मन को ब्रह्म मान बैठते हैं फिर उस विचार को त्याग देते हैं। नारद जी संकल्प को ब्रह्म मान बैठते हैं, उसे भी त्याग देते हैं। इसी प्रकार चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल अन्न आदि नाना वस्तुओं को ब्रह्म

मानते व छोड़ते चले जाते हैं। उपनिषदकार इस प्रश्नोत्तर की रीति से यह समझाते हैं कि ये सब पदार्थ ब्रह्म नहीं हो सकते हैं। बाद को ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण किया गया है। विपक्षी ने पूर्व के समान इसमें भी नारद के 'मन को आत्मा मानने' की बात का अधूरा प्रमाण 'मनोह्यात्मा' देकर शरारत की है जब कि प्रकरण के अनुसार नारद के द्वारा मन को भी छोड़कर विकल्प और संकल्प को छोड़कर चित्त और इसी प्रकार कई चीजों को ब्रह्म न मानने की बात साथ २ उपनिषद में दी हुई है। तब विपक्षी का अधूरा प्रमाण देना कहां की सभ्यता है जो कि उसके पक्ष का विरोधक पूरा उद्धरण देने पर बन जाता है।

विपक्षी द्वारा प्रस्तुत अगला प्रमाण भी हमारे ही पक्ष का पोषक है—

सोऽवर्धत् स महान भवत् स महादेवोऽभवत् ।

(अथर्व १५—१—४)

अर्थात्—मनुष्य उन्नति करता हुआ विद्वान होने पर (विद्वान्सो हि देवा:) देव माना जाता है। और महान् विद्वान होने पर उसे 'महादेव' महानदेव कहते हैं। अथवा वह बन जाता है। यही आर्य समाज व वेदों का सिद्धान्त है। जो विश्व के विद्वानों से भी महान एवं सर्व दिव्य गुणों का भण्डार परमात्मा है उसे भी 'महादेव' शब्द से सम्बोधन किया जाता है। इस मान्यता से आर्य समाज के पक्ष में कोई हानि नहीं आती है।

"प्रणाऽपाननिमेषोन्मेष जीवन मनोगतीन्द्रियान्तर्विकारः।
सुख दुःखेच्छा द्वेष प्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि ॥"

(वै० ३–२–४)

तथा इच्छाद्वेष प्रयत्न सुखदुःख ज्ञानात्मनो लिंगमिति ॥

(न्या १–१–१०)

ये सब लक्षण जीवात्मा के हैं जो शरीरगत अभिमानी जीव होता है। इन लक्षणों को परब्रह्म के लक्षण कौन मानता है। कोई मूर्ख व्यक्ति भी इनको ईश्वर का लक्षण नहीं बताता है। न दर्शन शास्त्रों ने हीं ईश्वर के लक्षण इनको लिखा है।

वर्तमान विज्ञान के अनुसार शून्य तापमान तक बर्फ में रोगी को दवाकर ठण्डा कुछ समय तक रखने पर भी जीवात्मा का सम्बन्ध शरीर से विच्छेद नहीं होता है यह पाश्चात्य चिकित्सा ने प्रमाणित कर दिया है। अतः जीवात्मा का नाम अग्नि व आदित्य इसलिए बताना कि आत्मा के रहने पर शरीर गर्म रहता है और आत्मा के निकलने पर शरीर ठण्डा हो जाता है, मूर्खतापूर्ण तर्क है। न जीवात्मा के ये नाम वेदादि शास्त्रों में कहीं आये हैं। हां ! ये नाम परमेश्वर के अवश्य आये हैं। मुनि समाज के सम्पूर्ण सिद्धान्त मूर्खतापूर्ण एवं असत्य है, विपक्षी तो साक्षात् मूर्खता के प्रचार का ठेकेदार बना बैठा है। विपक्षी वेद के निम्न प्रार्थना मन्त्र की प्रथम पंक्ति उद्धृत करता है। पूरा मन्त्र नहीं देता है ताकि उसकी पोल न खुल जावे।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इन्द्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥
(यजु० २५-११)

इस मन्त्र का महर्षि दयानन्द जी महाराज निम्न प्रकार अर्थ करते हैं:—

(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एक इत) एक ही (राजा) राजा (बभूव) विराजमान है, (यः) जो (अस्य) इस द्विपदः) मनुष्यादि (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीरों की (ईशे) रचना करता है, हम लोग (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ऐश्वर्य के देने-हारे परमात्मा की उपासना (हविषा) अपनी सकल उतम सामग्री को

उसकी आज्ञा पालन में समर्पित करके (विधेम) भक्ति विशेष किया करें।

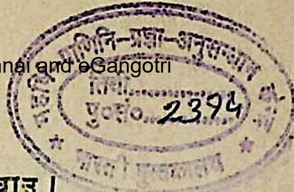
इसके बाद विपक्षी निम्न मन्त्र की केवल दूसरी पंक्ति लिखता है—

य: आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषंयस्य देवा: ।
यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्यु: कस्मै देवाय हविपा विधेम ॥
(यजु० २५-१३)

अर्थ—(य:) जो (आत्मदा) आत्मज्ञान का दाता, (बलदा) शरीर, आत्मा और समाज के बल को देनेहारा, (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवा:) विद्वान लोग (उपासेत) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषम) प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, (यस्य) जिसकी (छाया) शरण व आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है, (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्यु:) मृत्यु आदि दु:ख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसकी आज्ञा पालन में तत्पर रहें।

इन दोनों मन्त्रों आधे के पद देकर विपक्षी प्रपंच रचना चाहता है। इन दोनों मन्त्रों से स्पष्ट है कि जो परमेश्वर (राजजगतोबभूव) विश्व का एक मात्र राजा अर्थात पूर्ण स्वामी है, जिसने दो पैर वाले मनुष्यादि प्राणी एवं चार पैर वाले पशु आदि प्राणी जगत को पैदा किया है, जो (आत्मदा बलदा) आत्मिक एवं शारीरिक मानसिक आदि बलों का देनेहारा है इस परमेश्वर की उपासना करने का विधान है। यह गुण जीवात्मा में नहीं घटते हैं। यह केवल परमेश्वर के ही कार्य हैं। अत: इन वेद मन्त्रों में जीवात्मा का वर्णन बताना और अधूरे मंत्र उद्धृत करके छल प्रपंच रचना विपक्षी का पाखण्डी होना प्रगट करता है।

इस पुस्तक का अन्तिम वेदप्रमाण विपक्षी ने निम्न प्रकार उद्धृत किया है।



अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्म द्विषेशरवेहन्तवाउ ।
अहं जनाय समदं कृणुम्यहं द्यावा पृथ्वी आविवेश ॥अथर्व४।३०।५

इस मंत्र में प्रजा का रक्षक राजपुरुष यह कहता है कि मैं (रुद्राय) प्रजा को रुलाने वा पीड़ित करने एवं (ब्रह्मद्विषे) वेदज्ञ विद्वानों से द्वेष करने वालों के हनन के लिये धनुष को तानता हूं।

यह राज पुरुषों का कर्तव्य है कि वे प्रजा की रक्षा की व्यवस्था करें। इसमें आपत्ति की कोई बात नहीं है। विपक्षी को शिकायत है कि उसे वेद पढ़ने से अरुचि होती है। इसमें वेद का तो कोई दोष नहीं है। दोष विपक्षी का है कि वह वेदों को समझने की योग्यता नहीं रखता है। वेदों के अर्थ त्रिविध होते हैं। वेदों को समझने के लिये पहिले विपक्षी योग्यता अपने अन्दर पैदा करे तब वह वेदों की ओर मुड़ कर देखे। जैसे मज़हबी रंग में अन्धा एक मुसलमान या ईसाई वेद को नहीं समझ सकता है उसी प्रकार खुदाई का दम भरने वाला ज्ञान विज्ञान की शिक्षा से शून्य विपक्षी भी वेद के मर्म को नहीं समझ सकता है। इसके बाद विपक्षी ने अपने पुराने आरोप को पुनः दोहराने में ५ सफे खराब किये हैं कि ब्रह्मा-प्रजापति आदि नाम निघन्टु में ईश्वर के नहीं दिये हैं, जिसका हम पिछले अध्यायों में उत्तर दे चुके हैं।

अध्याय १८

इस पुस्तक का पांचवा अध्याय अन्तिम अध्याय है। इसमें विपक्षी ने कोई विशेष बात ऐसी नहीं लिखी है जिसका उत्तर देने की आवश्यकता हो। उसने रोना रोया है कि ईश्वरीय ग्रन्थ कोई भी नहीं है। सारे ही धर्म व मजहब झूठे हैं। अतः सब लोगों को आँखें बन्द करके विपक्षी की भेड़ों में शामिल हो जाना चाहिये।

हम समझते हैं कि आज संसार में बुद्धिवाद का प्रचार हो रहा है। अतः समझदार लोग ऐसे पाखण्डी एवं पैसा कमाऊ चतुर व्योपारी लोगों से सावधान रहेंगे और उनके फन्दे में फँसने वाली भोली भाली जनता को भी ऐसे पाखण्ड जाल में फँसने से बचावेंगे। साधारण जनता धर्म के विषय में विशेष जानकार नहीं होती है अतः चतुर लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये आसानी से उसको बहका लेते हैं। भारत एक धर्म भावना प्रधान देश है। हमारी हिन्दू जनता साधु सन्तों पर अन्ध विश्वास रखती है। अतः चतुर लोग साधुओं का भेष रख कर सुगमता से अपना कार्य भोली जनता को बहकाकर बना लेते हैं। विपक्षी भी इसी पोल को देखकर योगीश्वर मुनीश्वर तथा साक्षात परमात्मा बन बैठा है। रद्दी कागज पर ६० पृष्ठ की किताब का दाम २) तथा १५० पृष्ठ की किताब का दाम ४) रखकर अपने दलालों को ४०) सैकड़ा कमीशन देकर माल पैदा करने में लगा है। पुस्तकें उसकी पुस्तकों के विज्ञापनों की प्रशंसा से भरी पड़ी हैं।



एक एक बात को बार २ कई कई स्थानों पर लिखता चला जाता है और येन केन प्रकारेण किताब का कलेवर बढ़ाने में लगा रहता है। गोरखपुर के आर्य समाजियों के सामने जब पाखण्ड नहीं चलता है तो ऋषि दयानन्द जी महाराज की पुस्तकों को 'मूर्खता पूर्ण' आदि गालियां बार २ लिखता है। उसकी दोनों पुस्तकें उसके द्वेषी विचारों को व्यक्त करती हैं। पाण्डित्य की कोई बात ढूंढने से भी हमको उसके लेखों में नहीं मिल सकी है। विपक्षी ने जिस भाषा का प्रयोग महर्षि दयानन्द जी महाराज के लिये किया है उसे ध्यान में रखते हुए हमने विवश होकर शठे प्रति शाठ्यम् कुर्यात्' की नीति का अनुसरण उसके गर्व मर्दन के लिए करना ठीक समझा है। अतः कुछ कठोर भाषा का प्रयोग उसके विकृत मस्तिष्क को ठीक करने के लिये किया है। आशा है इसके लिये विज्ञ पाठक हमें क्षमा करेंगे। हमारा सिद्धांत है कि सज्जनों के साथ सज्जनता तथा दुष्टों के साथ उनके योग्य भाषा का व्यवहार किया जाना उचित रहता है।

आशा है इस पुस्तक को पढ़ कर पाठकों को वैदिक धर्म के मान्य सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त होगी और वे मुनि समाज द्वारा फैलाये जा रहे पाखण्ड एवं लूट खसोट से जनता की रक्षा करने में इस पुस्तक का उपयोग करेंगे।

खेद प्रकाश

कुछ विशेषताओं के कारण हम इस पुस्तक का प्रूफ नहीं देख सके हैं। अतः पुस्तक के अन्दर छापे की अशुद्धियां रह गई हैं, उसका हमें खेद है। हमने पुस्तक के अन्त में अशुद्धियों का शुद्धा शुद्ध पत्र दे दिया है। पाठक उनसे पुस्तक को सुधार लेंवे। और भी यदि कोई गलती छापे की रह गई हो तो ठीक करलें। आगामी संस्करण में सबको सुधार दिया जायगा।

प्रकाशक—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	३	आये	आर्यं
७	१	वरुणा:	वरुण:
	१९	में	में लिखने की
१०	२	विस्मिल्लाह	बिस्मिल्लाह की जगह
	७	मंगलचरण	मङ्गलाचरण
	१५	शंवरुरण:	शंवरुण:
	१७	तैस्तिरी	तैत्तिरी
११	२	हुहुक्रम:	रुरुक्रम:
१४	१४	दम्भा	दम्भी
१८	११	पदार्दों	पदार्थों
२०	१८	तुष्यात्	तुष्पात्
२१	५	उपनिनद्	उपनिषद्
२४	१४	विनय	नियम
२६	१४	सृष्टि	सृष्टि सृष्टि
	२५	बनाने	बनने
३१	२१	बाप	का बाप
३७	२६	के	को
४९	२१	शलि	शील
५१	७	चास्क	यास्क
५३	५	मुक्त	युक्त
५४	१२	सत्	तत
५७	७	शौपरमृष्ट:	शयैरपरामृष्ट:
		योन	योग
	८	व्यात	व्याप्त
५८	१८	प्रमान	पुमान
	२४	जीय	जीव
५९	६	तदायुस्तदास्तदु	त्तदवा-युस्तद्
६०	१	चद्वा:	चद्वो:
	१८	भारत	भारत के
६५	१४	वेदान्तों	वेदज्ञों
	२४	की	×
६६	१	वमानर्त	वर्तमान
७१	११	महद्दो	महतो
	२२	शुष्यत्ते	शुष्यत्ये
७२	२	जीवायेतं	जीवापेतं
७४	१०	सन्त्रार्थ	मन्त्रार्थ
	२१	गुणद्भ्तोऽग्नेरचिं	गुणद्भ्योऽग्नेरयिं
७५	१	रचिं	रयिं
	१२	पर्व	पूर्व
७७	१०	पागन	पालन
७८	१४	विद्याथा	विद्यया
८०	२	तन्वाऽस्थनं	तन्वाऊनं
८१	१८	विपद्दी	विपद्दी ने
८९	९	हित	रहित
९०	२४	प्रहस्यिों	प्रहस्थियों
९३	१२	रखना	रखता
९६	१६	कट	कूट
९९	१७	अविद्या	अविद्यया
१००	१९	नानि	ज्ञानानि
		सत्र	सूत्र
	२२	अयवाय	अयनाय
१०३	१८	अन्नोनाति	अन्नेनाति
१०४	६	भक्त	मन्त्र
१०७	१४	तमसांम्या	तमसांसभ्या
११५	१८	तेतीस	तैत्तिरी
११६	२५	तुला	जल
११९	४	सड	सउ
	२३	तदरे	तद्दूरे
	२५	सर्वस्थ	सर्वस्य



खण्डन मण्डन ग्रन्थमाला की

—पुस्तकों की

अवतार रहस्य (अवतारवाद का पोलखा	
शिवलिंग पूजा क्यों ? (मूत्रेन्द्रिय पूजा क	
मुनि समाज मुख मर्दन । (मुनि समाज का उत्त	
शिवजी के चार विलक्षण बेटे ।	
माधवाचार्य की चुनौती का उत्तर ।	·४४ ,,
पुराणों के कृष्ण ।	·३१ ,,
मृतक श्राद्ध खण्डन ।	·३१ ,,
पौराणिक कीर्तन पाखण्ड है ।	·२५ ,,
नृसिंह अवतार वध ।	·१२ ,,
पौराणिक मुख चपेटिका ।	·१९ ,,
शास्त्रार्थ के सनातनी चैलेन्ज का उत्तर ।	·२५ ,,
सनातन धर्म में नियोग व्यवस्था ।	·२५ ,,
संसार के पौराणिक विद्वानों से ३१ प्रश्न ।	·१२ ,,
ईसाई पैगम्बरों का चरित्र चित्रण ।	·०६ ,,

नोट—कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित हो रहे हैं। धार्मिक पाखण्डों के खण्डन एवं वैदिक धर्म के ठोस प्रचार के लिए इन पुस्तकों को भारी संख्या में मँगाकर भारी प्रचार की व्यवस्था करें। इन पुस्तकों से मतवाले मतवादियों में देश एवं विदेशों में भारी हलचल मचादी है।

व्यवस्थापक—वैदिक साहित्य प्रकाशन संघ
कासगंज (उ०प्र०) भारतवर्ष

श्री गोपाल इलैक्ट्रिक प्रिंटिंग प्रेस हाथरस ।